7

मधु कलश

सहायक पुस्तक माला



AKANKSHA TANDON
VII - B

7

मधु कलश

सहायक पुस्तक माला



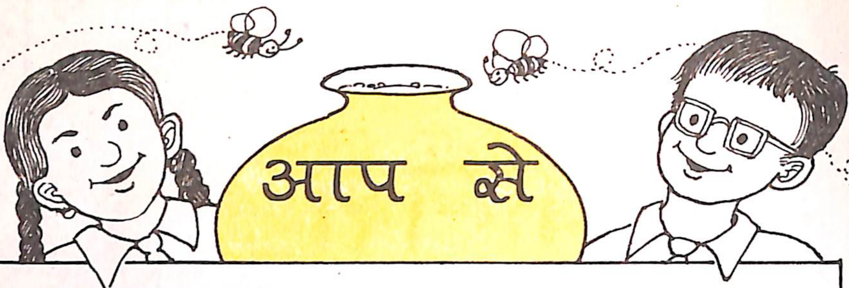
मधु नागपाल
भूतपूर्व अध्यापिका
स्प्रिंग डेल्स स्कूल,
नई दिल्ली

सुषमा बब्बर
अध्यापिका
स्प्रिंग डेल्स स्कूल,
नई दिल्ली

चित्रांकन
सुबिनीता देशप्रभु



मधुबन



भाषा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान और आनंद की प्राप्ति है । मधु कलश सहायक पुस्तक बच्चों को भाषा एवं साहित्य की जानकारी देने का एक अनूठा प्रयास है । इसमें कहानियों के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं-नाटक, कविता, पत्र, संवाद आदि का भी समावेश है । पुस्तक का एक-एक शब्द पढ़ाना और उसका स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है । सभी पाठ बाल केंद्रित हैं ।

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रंग के फूलों से एकत्रित पराग द्वारा शहद की व्युत्पत्ति होती है उसी प्रकार बाल रुचि एवं बाल अनुभव के आधार पर विभिन्न लेखकों की रचनाओं का सरलीकरण कर इस मधु कलश में संग्रहीत किया गया है । यह कहना तो अत्युक्ति है कि इस पुस्तक में शहद के अमरत्व गुण उपस्थित हैं, फिर भी इसमें अनेक रंगों का समावेश किया गया है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, एवं व्यक्तिक आधार लेकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बाल भावनाओं से जुड़े हैं ।

कहानी का एक अनिवार्य अंग कथानक होता है । इस संकलन में उन कहानियों का संग्रह किया गया है जिनमें रोचकता एवं जिज्ञासा अंत तक बनी रहती है । भाषा ज्ञान एवं शैक्षिक दृष्टिकोण भी इन कहानियों के पीछे दृष्टव्य है ।

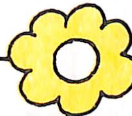
मैं 'स्प्रिंग डेल्स' स्कूल की हृदय से आभारी हूँ जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना तथा जीवन के सभी मूल्यों को देखा और उन्हें कहानियों के रूप में इस पुस्तक द्वारा आप तक पहुँचा पाई । आशा है मधु कलश-7 का यह पुष्प पाठकों की आशाओं एवं अपेक्षाओं की पूर्ति करने में समर्थ होगा ।



मधु नागपाल

कथा क्रम








Acknowledgements

The Publishers have applied for copyright permission wherever possible. Appropriate acknowledgement will be made at the first opportunity.

1. खुदा कौन

एक कस्बे के समुद्री-तट पर एक सराय थी जिसमें देशी-विदेशी यात्री और मल्लाह आराम करने के लिए रुकते थे और जलपान करने के बाद आगे रवाना हो जाते थे । एक बार एक अफ्रीकी गुलाम के साथ पारसी धर्म का एक उपदेशक वहाँ रुका । जलपान करने के बाद उसने गुलाम से पूछा, "क्या तुम बता सकते हो खुदा क्या है ?"

अफ्रीकी गुलाम ने तुरंत म्यान से तलवार निकालकर कहा, "यह है मेरा खुदा, जो हर वक्त मेरी हिफाज़त करता है ।"

गुलाम के इस उत्तर से सभी उपस्थित जन चौंक उठे । वहाँ बैठे एक ब्राह्मण ने कहा, "नहीं ! ब्रह्म ही सच्चा ईश्वर है ।"

यहूदी ने कहा, "यहूदियों का खुदा ही सच्चा खुदा है ।"

ईसाई ने कहा, "एक इन्सान गिरजे में ही खुदा को देख सकता है ।"

तुर्क ने कहा, "कोई बुत खुदा नहीं हो सकता । खुदा एक ऐसी ताकत है, जिसे सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है ।"

वहाँ बैठे प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-अपने विश्वास के अनुसार उस प्रश्न का उत्तर दिया । पास ही चीन के महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस का एक शिष्य कोने में बैठा सबकी बातें सुन रहा था । बहस जब लंबी होने लगी तो वह बोला, "हर आदमी का अपना-अपना विश्वास होता है और यह ज़रूरी नहीं कि एक का विश्वास दूसरे से मेल खाता हो । मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ-

मैं चीन से इंग्लैंड के एक जहाज पर सवार हुआ था। यह जहाज दुनिया का चक्कर लगाकर आया था। हमें कुछ साफ़ और ताज़े पानी की आवश्यकता थी इसलिए हमारा जहाज सुमात्रा के तट पर रुका। कुछ यात्री जहाज से उतरकर समुद्र के किनारे नारियल के पेड़ों के नीचे आकर लेट गए। सभी यात्री विभिन्न देशों से संबंध रखते थे जिनकी भाषा, धर्म, संस्कृति सब अलग-अलग थी। एक अंधे आदमी ने पास आकर दूसरे आदमी से पूछा, "सूरज क्या है ?"

उस आदमी ने कहा, "मेरा दीपक ही सूरज है क्योंकि इसकी सहायता से मैं झोंपड़ी में रखी हर वस्तु देख सकता हूँ। यही है मेरा सूरज।"

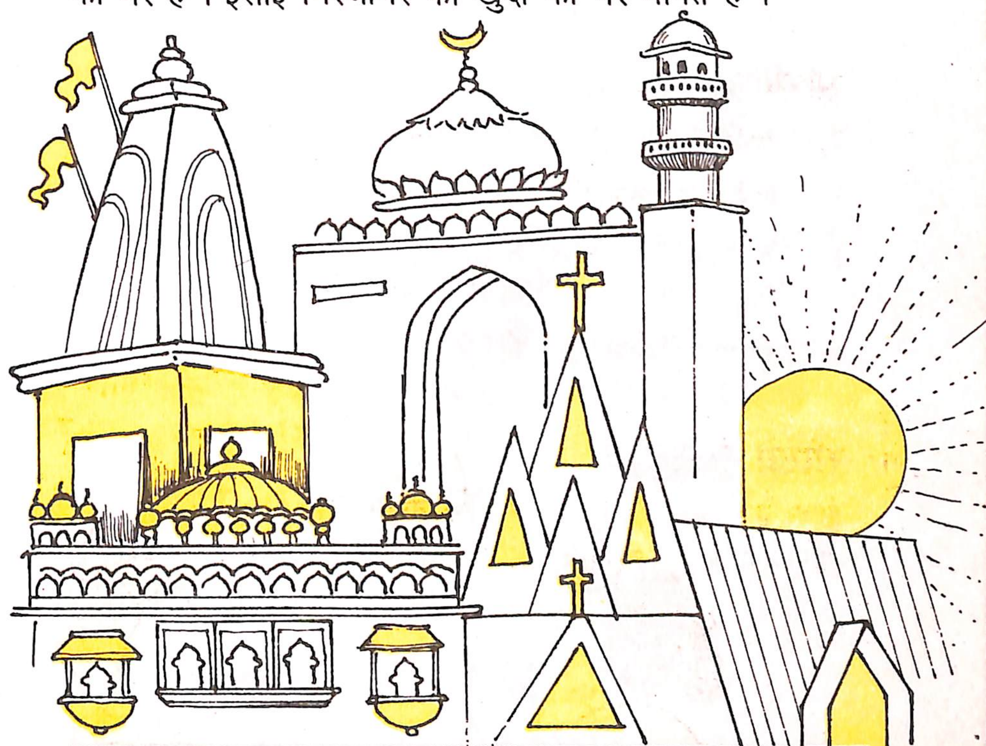
एक लंगड़ा आदमी उसकी बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "सूरज एक आग का गोला है जो प्रतिदिन सुबह पहाड़ों से निकलता है और शाम को हमारे द्वीप के पहाड़ों में छिप जाता है। तुम्हारी आँखें होतीं तो तुम भी यह देखते।"

एक नौजवान मछेरा उनके पास आकर बोला, "ऐसा लगता है कि तुम कभी अपने द्वीप से बाहर नहीं गए। मैं अलग-अलग द्वीपों में गया हूँ और मैंने सूरज को सुबह समुद्र से निकलते और शाम को समुद्र में डूबते देखा है।"

एक भारतीय मछेरे ने उसकी बात काटते हुए कहा, "ये सब बातें बेबुनियाद हैं। यह कैसे हो सकता है कि आग का गोला समुद्र में डूब जाए और समुद्र का पानी उसे न बुझाए ! वास्तव में सूरज एक देवता हैं। वे प्रतिदिन सुबह सोने के पहाड़ों से रथ पर सवार होते हैं और शाम को चाँदी के पहाड़ों में छिप जाते हैं।"

ये सब बातें सुन इंग्लैंड के मल्लाह ने जोर से कहा, "किसी

देश के नागरिक सूरज के बारे में उतना नहीं जानते जितना इंग्लैंड के लोग जानते हैं । सूरज न कहीं छिपता है न कहीं से निकलता है । पृथ्वी सूरज की परिक्रमा करती है । यह केवल पृथ्वी को ही रोशनी नहीं देता बल्कि चाँद-सितारों को भी प्रकाश देता है । जिस प्रकार हम सूरज को नहीं समझ पाए हैं उसी प्रकार खुदा को भी ठीक से नहीं समझ पाए हैं । सभी मनुष्य धार्मिक मामलों पर संकुचित विचार रखते हैं और धर्म की बातों पर झगड़े करने लगते हैं । हर आदमी चाहता है कि उसका खुदा अलग हो । हर कौम उसे अपने उपासना गृह में बंद रखना चाहती है जबकि सब धर्मों के उपासना गृह छोटे हैं और ईश्वर बहुत बड़ा है । वह इन उपासना गृहों में बंद नहीं किया जा सकता है । हिंदू कहते हैं कि मंदिर भगवान का घर है । मुसलमान कहते हैं कि मस्जिद खुदा का घर है । ईसाई गिरजाघर को खुदा का घर मानते हैं ।



क्या ये सब पूजास्थल उस पूजास्थल के बराबर हो सकते हैं जो खुदा ने हम सबके लिए बनाया है ? वह उपासना गृह यह दुनिया है । यह छोटी-सी दुनिया, यह बड़ी-सी दुनिया खुदा ने इसलिए बनाई है कि सब लोग इसे अपना घर सोचें और इसमें मिल-जुलकर रहें । एक दूसरे से प्यार करना सीखें । हमें दूसरे धर्मों को अपने धर्म से नीचा नहीं समझना चाहिए । अपने धर्म के साथ दूसरे धर्मों का आदर करें क्योंकि सभी धर्म इन्सान को आपस में प्रेम करना सिखाते हैं, घृणा करना नहीं ।''

चीनी नागरिक की यह कहानी सुनकर सभी शांत हो गए और फिर उनमें इस बात पर झगड़ा नहीं हुआ कि किसका विश्वास सही है और किसका गलत ।

- लेब तालस्ताय

सोचो और बताओ

1. सराय में बैठे यात्रियों के बीच क्या चर्चा हो रही थी ?
2. इंग्लैंड के मल्लाह ने सूरज के बारे में क्या बताया ?
3. दार्शनिक कन्फ्यूशियस के शिष्य ने कौन-सी कहानी सुनाकर उनकी जिज्ञासा शांत की ? संक्षेप में बताओ ।
4. तुम्हारे विचार से खुदा कौन है ?

सीखो-सिखाओ

ईश्वर द्वारा बनाई गई यह दुनिया एक उपासना गृह है जहाँ सबको प्रेम से रहना चाहिए ।



2. बकरी दो गाँव खा गई

"हाय ! बकरी दो गाँव खा गई ।" एक आदमी आगरा की सड़कों पर रोता-चिल्लाता घूम रहा था । लोग आश्चर्य में थे कि भला बकरी गाँव कैसे खा सकती है ? आखिर यह खबर बादशाह अकबर तक पहुँची । बादशाह ने उसे दरबार में बुलाया । उस आदमी को उन्होंने देखते ही पहचान लिया ।

बादशाह को याद आया कि वे कुछ समय पहले आगरा के पास किसी गाँव में गए थे । वे बहुत थक गए थे । यह आदमी उन्हें वहाँ गन्ने के एक खेत में मिला था । उन्होंने उससे कहा था, "भाई थोड़ा गन्ने का रस पिला सकते हो ?"

"हाँ...हाँ... आप बैठिए । मैं अभी लाया ।"

अकबर एक पेड़ की छाया में बैठ गए । उस किसान ने खेत में जाकर एक गन्ना तोड़ा और एक बड़े लोटे में रस निकालकर ले आया ।

अकबर ने गन्ने का रस पिया तो बहुत खुश हुए । "अरे वाह ! ऐसा रस तो हमने पहले कभी नहीं पिया ।"

"जी, यह सिर्फ़ एक ही गन्ने का रस था ।"

"क्या ? एक गन्ने में इतना सारा रस !" अकबर को आश्चर्य हुआ । "मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ, हुज़ूर !"

"कमाल की बात है !"

"यह हमारे बादशाह की नीयत का कमाल है, जनाब ! अगर उनकी नीयत ठीक न हो, तो गन्नों में रस ही न निकले ।"

"अच्छा, कितना लगान देते हो ?"

"जी, लगान तो केवल पच्चीस पैसे ही देने पड़ते हैं ।"

"केवल पच्चीस पैसे !" बादशाह ने हैरान होकर पूछा । फिर वे सोचने लगे कि ऐसे रसवाले गन्ने के खेत पर तो अधिक रुपए लगान लगाना चाहिए । ठीक है... आगरा पहुँचते ही इसका लगान बढ़ा दूँगा ।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करने के बाद अकबर ने कहा, "अच्छा भाई, चलने से पहले एक लोटा रस और पिला दो ।"

किसान लोटा लेकर चला गया । उसने एक गन्ना तोड़ा लेकिन इस बार लोटा न भरा, फिर एक के बाद एक तीन-चार गन्ने तोड़े और उनका रस निकाला, फिर भी लोटा न भरा ।

अकबर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । सोच रहे थे कि इस बार तो इसने देर कर दी । तभी किसान मुँह लटकाए हुआ आया और लोटा बादशाह की ओर बढ़ा दिया । लोटे में थोड़ा-सा ही रस था ।

"अरे ! क्या बात है ?" इतना कम रस लेकर क्यों आए ?" "कुछ नहीं, हुज़ूर ! लगता है, अकबर बादशाह की नीयत बिगड़ गई है । उसी का असर है ।"

और अकबर को लगा जैसे किसी ने उन्हें आसमान से ज़मीन पर पटक दिया है । आदमी की नीयत बदल जाने से क्या पेड़-पौधों पर भी असर पड़ता है ? उन्हें लगा, जैसे एक मामूली किसान एक बादशाह को इन्सानियत का पाठ पढ़ा रहा है । जहाँ नीयत अच्छी है वहाँ बरकत होती है । भंडार भरा रहता है । लालच और छोटापन आदमी को कभी सुखी नहीं बनाते । अकबर ने कहा, "भाई ! तुम जानते है, मैं कौन हूँ ?"

किसान संशयपूर्वक बादशाह की ओर देखने लगा ।

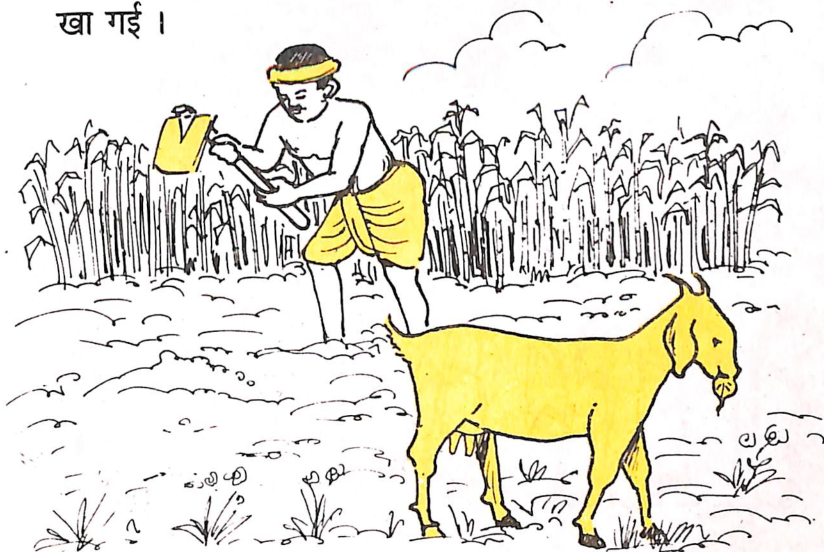
"मैं बादशाह अकबर हूँ ।"

किसान ने घबराकर पूछा, "मैंने कोई गलत बात तो नहीं कह दी ?"

"नहीं ! तुमने मुझे वह बात सिखाई है जो बड़े-बड़े विद्वान गुरु भी अपने शासकों को नहीं सिखा पाते । आज से तुम्हारे खेत का लगान माफ़ किया । जाओ, इस बार लोटा भरकर रस ले आओ ।"

किसान फिर से खेत में आया । इस बार फिर से एक ही गन्ने के रस से लोटा भर गया । वह खुश होकर दौड़ा आया । उसने लोटा आगे बढ़ा दिया । अकबर ने रस पिया । फिर पीपल का एक पत्ता उठाकर बोले, "हम इस पर तुम्हें दो गाँव देने का हुक्म लिख रहे हैं । कल आगरा आना और पक्के कागज़ लिखवा लेना । तुम्हारे खाने-पीने का इंतज़ाम इन गाँवों की आमदनी से हो जाएगा ।"

किसान ने पीपल का पत्ता रख लिया । अकबर बादशाह चले गए । किसान काम में लग गया, कुछ देर बाद वह पत्ते की बात ही भूल गया । किसान की बकरी आई और उस पत्ते को खा गई ।



जब किसान को उस पत्ते की याद आई तो उसने देखा कि पत्ता तो अपनी जगह पर नहीं है। वह रोने-चिल्लाने लगा। अब भला उसे बादशाह कैसे पहचानेंगे ? उस पत्ते को देखे बिना गाँव कैसे देंगे। वह ज़ोर-ज़ोर से रोता-चिल्लाता आगरा पहुँचा- "हाय ! बकरी दो गाँव खा गई।"

बकरी द्वारा दो गाँव खाने का किस्सा सुनकर अकबर बादशाह किसान के भोलेपन पर बहुत हँसे। उन्होंने फिर उसे दो गाँव देने का हुक्म लिखकर दिया और जाते-जाते सावधान किया- "इस बार इन गाँवों को बकरी से बचाना।"

सारा दरबार कहकहों से गूँज उठा।

- हरिकृष्ण देवसरे

सोचो और बताओ

1. किसान से गन्ने का रस माँगने वाला कौन था ?
2. पहली बार गन्ने का रस पीने के बाद बादशाह के मन में क्या विचार उठा ?
3. बादशाह ने किसान की बात से क्या नसीहत ली ?
4. बकरी के दो गाँव खाने से लेखक का क्या आशय है ?

सीखो-सिखाओ

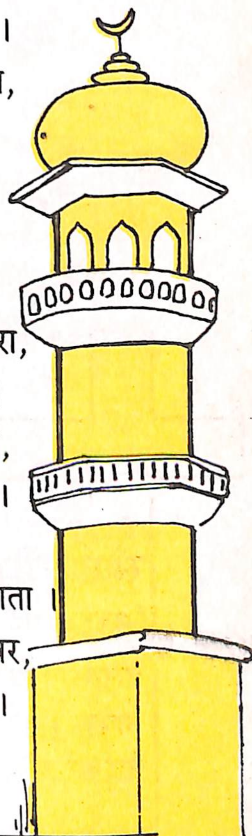
जहाँ नीयत अच्छी है वहाँ सुख-समृद्धि है। लालच और छोटापन आदमी को सुखी नहीं बनाते हैं।



3 सच्चा पंथ

मंदिर तो कहता है, मैं मस्जिद से प्यार करूँ,
पर पंडित कहता है, मुल्ला से तकरार करूँ।
मंदिर में प्रभु की प्रतिमा के आगे शीश झुकाया,
मन को शांति मिली, प्रिय ! मैंने मनवांछित फल पाया।
बाहर आकर घर जाने को मैंने चरण बढ़ाए,
कुछ ही दूर चला, रिमझिम-रिमझिम करते घन आए।
नज़र उठाई तो सम्मुख मस्जिद पड़ गई दिखाई,
भीतर पहुँचा तो दीवारों में से यह ध्वनि आई।
मंदिर में भी मैं था, मस्जिद में भी मैं ही रहता,
कोई मुझको राम और कोई रहीम है कहता।

मस्जिद तो कहती है, गुरुद्वारे से प्यार करूँ,
पर मुल्ला कहता है, ग्रंथी से तकरार करूँ।
कुछ ही कदम बढ़ा आगे, पथ में आया गुरुद्वारा,
मुझको लगा कि जैसे मेरे प्रभु ने मुझे पुकारा।
मानव-मानव एक भावना लेकर जन-कल्याणी,
गुरुद्वारे में गूँज रही थी, श्री सत्गुरु की वाणी।
सच्चा पंथ किसी भी राही को नहीं भटकाता,
फटे हुए दिल, करुणा के मरहम से सदा मिलाता।
सत-श्री-अकाल की महिमा सबके लिए बराबर,
मानव-मानव के अंतर की खाई यह देते भर।





गुरुद्वारे का कहना है, गिरजे से प्यार करूँ,
ग्रंथी कहता है कि पादरी से तकरार करूँ ।
उस दिन गिरजाघर में पहुँचा, मन में व्यथा छुपाए,
शांति-सिंधु ईसा के सम्मुख चरण मुझे ले आए ।
मुझे लगा जैसे मस्तक पर करुणाकर का कर था,
रह-रहकर मेरे कानों में गूँज रहा यह स्वर था ।
बुद्ध-मुहम्मद, ईसा-नानक और सभी पैगंबर,
पीड़ित मानवता की खातिर आए थे धरती पर ।
मानव-मानव का दुश्मन हमने कभी नहीं बतलाया,
यह भ्रम तेरे पंडित, ग्रंथी, मुल्ला ने फैलाया ।

गिरजे का कहना है, मैं मंदिर से प्यार करूँ,
किंतु पादरी कहता, पंडित से तकरार करूँ ।
मज़हब के ठेकेदारों ने कभी न मज़हब जाना,
मैंने सब कुछ परखा, सब कुछ जाना 'औ' पहचाना ।
माटी है कटु सत्य, जीव को अपनी गोद खिलाती,
हिंदू-मुस्लिम, सिख-ईसाई माटी नहीं बनाती ।
माटी तो कहती है मैं माटी से प्यार करूँ,
किंतु स्वार्थ कहता है, मैं मानव पर वार करूँ ॥

- देवराज दिनेश

सीखो-सिखाओ

'मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना ।'

मानव-मानव के बीच बढ़ती कटुता का कारण है—मानव की बढ़ती स्वार्थ भावना । आओ ! इस स्वार्थ भावना को दूर करने के लिए प्यार और भाईचारे की भावना फैलाएँ ।



4. बूढ़ी काकी



बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है । बूढ़ी काकी में जीभ-स्वाद के सिवाय और कोई चेष्टा शेष न थी, न रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा था । पृथ्वी पर पड़ी रहती और घर वाले यदि इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन कम मिलता, बाज़ार से कोई वस्तु आती और उसे न मिलती तो गला फाड़-फाड़कर रोती थी ।

उसके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे समय हो चुका था । बेटे भी जवान हो-होकर चल बसे । अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था । उसी भतीजे के नाम उसने सारी संपत्ति लिख दी । भतीजे ने पहले तो खूब लंबे-चौड़े वादे किए । किंतु ये सब वादे नाम के ही थे । संपत्ति की वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपए से कम न थी फिर भी बूढ़ी काकी को भोजन भी कठिनाई से मिलता था ।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी संपत्ति के कारण मैं इस समय अच्छी स्थिति में हूँ। यदि सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता होता तो शायद उन्हें कोई आपत्ति न होती परंतु विशेष व्यय का भय उनकी इस इच्छा को दबाए रखता। उनकी पत्नी रूपा भी स्वभाव से तेज़ थी। माता-पिता का यह रंग जब लड़के देखते तो वे भी बूढ़ी काकी को सताया करते। कोई चुटकी काटकर भागता कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख मारकर रोती, परंतु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए ही रोती है।

संपूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी को अनुराग था, तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यद्यपि काकी के लालच के कारण यह शरण उसको महँगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय सहने से अच्छी थी। शायद इसी कारण ने उन दोनों में सहानुभूति का बीज उत्पन्न कर दिया था।

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुंड गाने का आनंद ले रहा था। आज बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम का तिलक आया है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन के प्रबंध में व्यस्त थी। भट्टियों पर कड़ाह चढ़ रहे थे। एक में पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ निकल रही थीं, दूसरे में अन्य पकवान बन रहे थे। घी और मसाले की सुगंध चारों ओर फैल रही थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय बैठी हुई थी। वह मन ही मन विचार कर रही थी, संभवतः मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी।

इतनी देर हो गई, कोई भोजन लेकर नहीं आया। मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया, परंतु अपशकुन के भय से वह रो नहीं सकी। घी और मसालों की सुगंध रह-रहकर मन को आपे से बाहर कर देती थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। किसे पुकारूँ ? आज लाडली बेटी भी नहीं आई।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, गरम-गरम होंगी। क्यों न चलकर कड़ाह के सामने बैठूँ। पूड़ियाँ छन-छनकर तैयार होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ूँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई कठिनाई से चौखट से उतरी और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास आ बैठी।

रूपा उस समय कार्यभार से व्याकुल हो रही थी। कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में। कभी भंडार में जाती, कभी कड़ाह के पास आती। बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढ़ती थी परंतु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी देखा तो जल उठी। क्रोध न रुक सका। इतना भी ध्यान न आया कि लोग क्या कहेंगे। जिस प्रकार मेंढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और तीव्र स्वर से बोली, "ऐसे पेट पर आग लगे, पेट है या भाड़ ? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था ? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका ? आकर छाती पर सवार हो गई। जल जाए ऐसी जीभ। नाक कटवाकर दम लेगी। इतना ठूँसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो।

जब घर के लोग खाना खाएँगे तब तुम्हें भी मिलेगा । तुम कोई देवी नहीं हो कि तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाए ।''

बूढ़ी काकी ने सिर न उठाया, न रोई, न बोली । चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गई ।

भोजन तैयार हो गया । आँगन में पत्तल पड़ गए, मेहमान खाने लगे । स्त्रियों ने गीत गाने आरंभ कर दिए । बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में पश्चात्ताप कर रही थी कि मैं क्यों वहाँ गई । उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था, अपनी जल्दीबाजी पर दुख था ।

सच ही तो है, जब तक मेहमान लोग भोजन कर न चुकेंगे, घरवाले कैसे खाएँगे ? मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया । सबके सामने पानी उतर गया । अब जब तक कोई बुलाने न आएगा, न जाऊँगी ।

मन ही मन इसी प्रकार का विचार कर वह बुलाने की प्रतीक्षा करने लगी । उसे एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था । अब पत्तल बिछी होगी, अब मेहमान आ गए होंगे । लोग हाथ-पैर धो रहे होंगे । खाना खा रहे होंगे । क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर रहे होंगे ? मुझे कोई बुलाने नहीं आया । रूपा चिढ़ गई है, क्या जाने न बुलाए । वह कोई मेहमान तो नहीं जो कोई उसे बुलाने आए । बूढ़ी काकी चलने को तैयार हुई । उसने मन में तरह-तरह के मंसूबे बाँधे-पहले तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी फिर दही और शक्कर, कचौड़ियाँ रायते के साथ मज़ेदार मालूम होंगी । यह सोचकर वह उकड़ूँ बैठकर हाथों के बल सरकती हुई आँगन में आई परंतु हाय दुर्भाग्य ! मेहमान अभी बैठे थे । इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुँची । कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए । पुकारने लगे—''अरे ! यह बुढ़िया कौन है । यह कहाँ से आ गई ? देखो, किसी को छू न दे ।''

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गए। पूड़ियों का थाल लिए खड़े थे। थाल को ज़मीन पर पटक दिया और काकी के दोनों हाथ पकड़े तथा घसीटते हुए लाकर उन्हें अँधेरी कोठरी में धम से पटक दिया।

मेहमानों ने भोजन किया, घरवालों ने भोजन किया। बाजे वाले, धोबी, चमार भोजन कर चुके थे, परंतु काकी को किसी नें न पूछा। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली का हृदय माँ-बाप की निर्दयता देखकर पसीज उठा। वह काकी के पास जाना चाहती थी पर माँ के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिलकुल न खाई थीं। वह उनको काकी के पास ले जाना चाहती थी।

रात के ग्यारह बज गए थे। रूपा आँगन में सो रही थी। लाडली चुपके से उठी और बूढ़ी काकी की कोठरी की ओर चली।

बूढ़ी काकी को तो केवल इतना ही याद था कि किसी ने लाकर उसे ज़ोर से पटक दिया। सहसा उनके कानों में आवाज़ आई– "काकी उठो। मैं पूड़ियाँ लाई हूँ।" काकी ने लाडली को गोद में ले लिया और पूछा, "क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं।"

लाडली ने कहा, "नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।"

काकी पूड़ियों पर टूट पड़ी। पाँच मिनट में पूड़ियाँ समाप्त हो गईं।

लाडली ने पूछा, "काकी पेट भर गया ?"

जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठंडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी प्रकार इन थोड़ी पूड़ियों ने काकी की भूख और इच्छा को और भी उत्तेजित कर दिया था। बोली, "नहीं बेटी, जाकर अम्मा से और माँग लाओ।"

लाडली ने कहा, "अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेंगी ।"

काकी ने आस-पास गिरी खुर्चन खानी शुरू कर दी । सहसा लाडली से बोली, "मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले चलो, जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है ।" लाडली उसका मतलब समझ न सकी । उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठे पत्तलों के पास बैठा दिया । दीन, भूख से व्याकुल बुढ़िया पत्तलों से जूठे टुकड़े उठा-उठाकर खाने लगी । काकी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कभी नहीं करना चाहिए । मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ । परंतु बुढ़ापा वह अवस्था है जब सभी इच्छाएँ एक ही केंद्र पर आ लगती हैं । बूढ़ी काकी में यह केंद्र उसकी जीभ का स्वाद था ।

ठीक उसी समय रूपा की आँखें खुलीं । उसे मालूम हुआ कि लाडली उसके पास नहीं है ।

उसे वहाँ न पाकर वह उठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा-उठाकर खा रही है । रूपा का हृदय सन्न हो गया । एक ब्राह्मणी दूसरे की जूठी पत्तल टटोले, उससे अधिक भयानक दृश्य असंभव था । रूपा को क्रोध नहीं आया । शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ ? करुणा और भय से उसकी आँखें भर आईं ।



वह सोचने लगी, 'हाय ! मैं कितनी निर्दय हूँ । जिसकी संपत्ति से मुझे आय हो रही है उसकी यह दुर्गति । हे भगवान ! मुझसे भूल हुई है, मुझे क्षमा करो । आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया । परंतु जिसकी बदौलत हज़ारों रुपए खाए, उसे भरपेट भोजन न दे सकी । केवल इसी कारण कि वह वृद्धा असहाय है !

रूपा ने दिया जलाया, भंडार का द्वार खोला और एक थाली भोजन की सजाकर काकी की ओर चली । रूपा ने भरे गले से कहा, "काकी उठो, भोजन कर लो । मेरे अपराध के लिए मुझे क्षमा करना ।" भोलेभाले बच्चे की भाँति जो मिठाई पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थी । उसके एक-एक रोयें से सच्ची दुआएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्य का आनंद ले रही थी ।

-प्रेमचंद

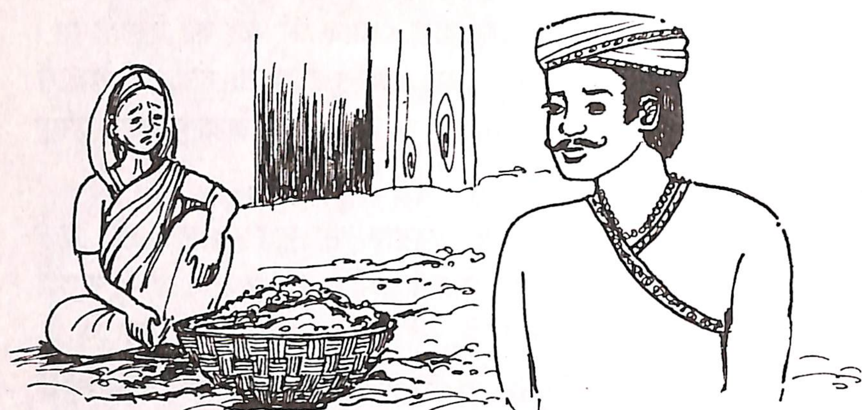
सोचो और बताओ

1. बूढ़ी काकी के साथ घर में कैसा व्यवहार होता था ?
2. आज बुद्धिराम के घर में कौन-सा उत्सव था ?
3. बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा ने बूढ़ी काकी के साथ कैसा व्यवहार किया ?
4. बूढ़ी काकी को किस दशा में देखकर रूपा को प्रायश्चित हुआ ?

सीखो-सिखाओ

बूढ़े और बच्चे में कोई अंतर नहीं होता । यदि तुम्हारे घर में कोई वृद्ध है तो उनकी देखभाल करना अपना कर्तव्य समझो ।

5. एक टोकरी भर मिट्टी



किसी जमींदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी । जमींदार साहब को अपने महल का हाता उस झोंपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हुई । विधवा से बहुत कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले, पर वह तो कई ज़माने से वहीं बसी थी । उसके पति और पुत्र की मृत्यु हो गई थी । पतोहू भी एक पाँच बरस की कन्या को छोड़कर चल बसी थी । अब यही पोती इस वृद्धाकाल में एकमात्र आधार थी । जब कभी उसे अपनी पूर्वस्थिति की याद आ जाती, तो मारे दुख के फूट-फूटकर रोने लगती थी । जब से उसने अपने पड़ोसी की इच्छा का हाल सुना, तब से वह मृतप्राय हो गई थी । उस झोंपड़ी में मानो उसकी जान बसती थी ।

जमींदार के जब सब प्रयत्न निष्फल हुए तब वह अपनी जमींदारी चाल चलने लगे । बाल की खाल निकालने वाले वकीलों की हथेली गरम कर उन्होंने अदालत से झोंपड़ी पर अपना कब्जा कर लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया । बेचारी अनाथ तो थी ही, पास-पड़ोस में कहीं जाकर रहने लगी ।

एक दिन जमींदार महोदय झोंपड़ी के आस-पास टहल रहे थे और लोगों को काम बतला रहे थे। इतने में वह विधवा हाथ में एक टोकरी लेकर वहाँ पहुँची। जमींदार ने उसको देखते ही अपने नौकरों से कहा कि उसे यहाँ से हटा दो। विधवा गिड़गिड़ाकर बोली, "महाराज, अब तो यह झोंपड़ी तुम्हारी ही हो गई है। मैं उसे लेने नहीं आई हूँ। महाराज क्षमा करें तो एक बिनती हैं।"

जमींदार के सिर हिलाने पर उसने कहा, "जब से यह झोंपड़ी टूटी है, तब से मेरी पोती ने खाना-पीना छोड़ दिया है। मैंने बहुत समझाया पर वह एक नहीं मानती। यही कहती है कि अपने घर चल वहीं रोटी खाऊँगी। अब मैंने यह सोचा कि इस झोंपड़ी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बनाकर रोटी पकाऊँगी। इससे भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज कृपा करके आज्ञा दीजिए तो इस टोकरी में मिट्टी ले आऊँ।" जमींदार ने कुछ सोचा और फिर दया दिखाते हुए आज्ञा दे दी।

विधवा झोंपड़ी के भीतर गई। वहाँ जाते ही उसे पुरानी बातें याद आने लगीं और उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। अपने आंतरिक दुख को किसी तरह सँभालकर उसने अपनी टोकरी मिट्टी से भर ली और उठाकर बाहर ले आई। हाथ जोड़कर श्रीमान से प्रार्थना करने लगी, "महाराज, कृपा करके इस टोकरी को ज़रा हाथ लगाइए जिससे मैं इसे अपने सिर पर धर लूँ।" जमींदार साहब पहले तो बहुत नाराज़ हुए पर जब वह बार-बार हाथ जोड़ने लगी और पैरों पर गिरने लगी तो उनके मन में कुछ दया आ गई। किसी नौकर से न कहकर स्वयं टोकरी उठाने आगे बढ़े।

ज्यों ही टोकरी को हाथ लगाकर ऊपर उठाने लगे, त्यों ही देखा कि यह काम उनकी शक्ति के बाहर है। उन्होंने अपनी सारी ताकत लगाकर टोकरी को उठाना चाहा पर जिस स्थान पर टोकरी रखी थी, वहाँ से एक हाथभर भी ऊँची न हुई। लज्जित होकर कहने लगे, "नहीं, यह टोकरी हमसे नहीं उठाई जाएगी।"

यह सुनकर विधवा ने कहा, "महाराज, नाराज़ न हों। आपसे एक टोकरी भर मिट्टी नहीं उठाई जाती क्योंकि इस पर आपका कोई अधिकार नहीं है। इस झोंपड़ी में तो हज़ारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जन्मभर क्योंकर उठा सकेंगे ? आप इस बात पर विचार कीजिए।"

जमींदार साहब धन-मद से गर्वित हो अपना कर्तव्य भूल गए थे, पर विधवा के वचन सुनते ही उनकी आँखें खुल गईं। विधवा से उन्होंने क्षमा माँगी और उसकी झोंपड़ी वापस दे दी।

– माधवराव सप्रे

सोचो और बताओ

1. जमींदार की क्या इच्छा थी ?
2. अनाथ विधवा ने जमींदार से क्या प्रार्थना की ?
3. झोंपड़ी के भीतर जाकर विधवा की क्या दशा हुई ?
4. जमींदार से टोकरी क्यों नहीं उठी ?

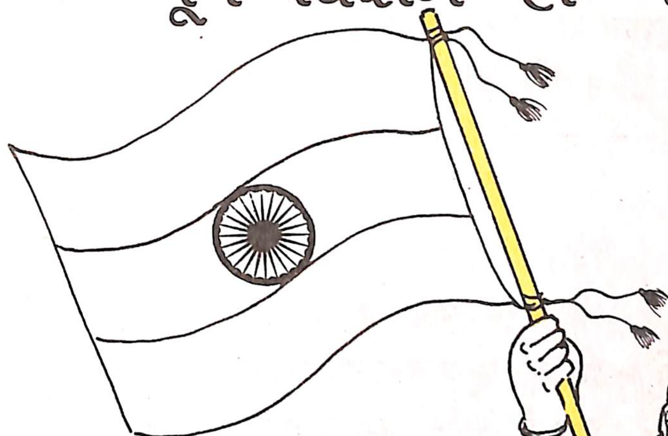


सीखो-सिखाओ

आज भी गाँव के जमींदार गरीबों पर अत्याचार करते हैं। शिक्षा का प्रसार ही इस बुराई को दूर कर सकता है।

जब तक अमीर गरीब का शोषण करता रहेगा भारतीय समाज कभी उन्नति नहीं कर सकेगा। आओ ! ऐसा समाज बनाएँ जहाँ कोई मनुष्य स्वार्थी नहीं हो।

6. आज़ादी मिलना क्या पूर्ण विराम हो गया?





अभी विषमता से छुटकारा कहाँ मिला है ?
शांत हुआ तूफान, किनारा कहाँ मिला है ?
यद्यपि हमने जेलों की दीवारें तोड़ीं,
सही दिशा में आज़ादी की धारा मोड़ी ।
नई दिशाएँ खोजीं, राहें नई बनाईं,
नए बढ़ाए कदम, भुजाएँ नई उठाईं ।



धाराओं के रुख मोड़े हैं बाँध बनाए,
सुलग उठीं भट्ठियाँ, लौह स्वर में हम गाए ।
आओ, फिर से करें प्रगति का लेखा-जोखा,
कितनी की हैं भूलें, कितना खाया धोखा ।
हममें से ही कोई विषधर पाल रहा है,
सूरज की किरणों पर डाके डाल रहा है ।

बाहर के दुश्मन से लड़ने में हम सक्षम हैं,
भीतर का दुश्मन भी लेकिन किससे कम है ?
सीमा की रक्षा से हमें न पीछे हटना,
पर घर के दुश्मन से पहले हमें निपटना ।
पाँव किसी के रहें न पीछे, और हाथ न खाली
इतने बड़े देश में श्रम की क्या कंगाली ।





जिसका पौरुष काम न आए, वह गरीब है,
जो सबसे पीछे रह जाए, वह गरीब है ।
श्रम का सूरज जहाँ निकले, वहाँ शाम नहीं है,
हाथ हैं कितने, कहे न कोई काम नहीं है ।
जड़ से ही काटो शोषण की परिपाटी को,
प्रखर ज्योति से पाटो तम की इस घाटी को ।

अभी कहो मत, इन्कलाब का काम हो गया,
आज़ादी मिलना क्या पूर्ण विराम हो गया ?

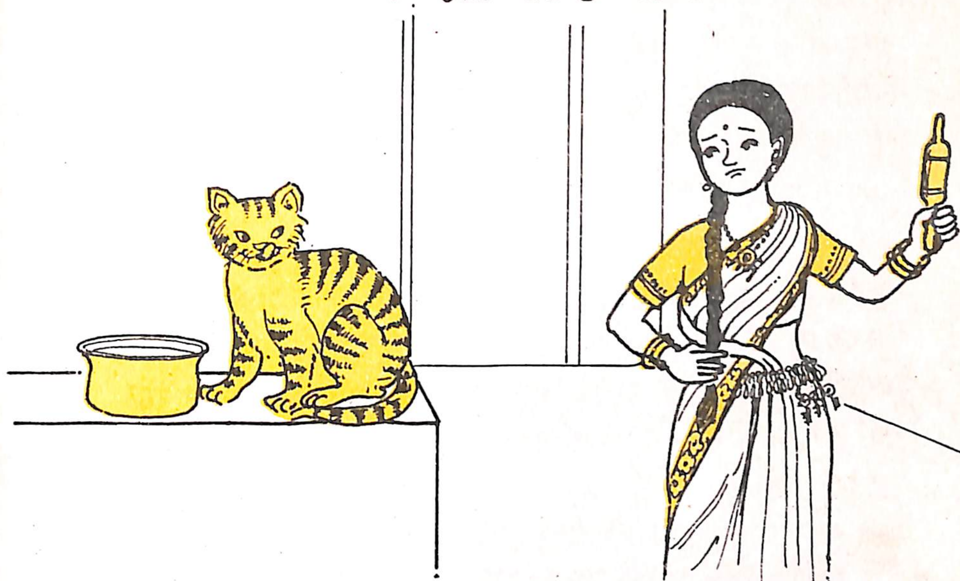
– हरि ठाकुर

सीखो-सिखाओ

आज़ादी का सही अर्थ समझो, गलत के विरुद्ध आवाज़ उठाओ । वह दिन दूर नहीं है जब तुम्हें अपने देश पर गर्व होगा ।

हमारा भारत महान !

7. प्रायश्चित



अगर कबरी बिल्ली घर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से। अगर रामू की बहू घर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू दो महीना हुआ मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी चौदह वर्ष की बालिका। भंडार घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब कुछ।

लेकिन बहू ठहरी चौदह वर्ष की बालिका ! कभी भंडार घर खुला है तो कभी भंडार घर में बैठे-बैठे सो गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के मज़े ही मज़े। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जामन देने गई और दूध नदारद।

अगर यह बात यहीं रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार । रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आए, तब तक कटोरी साफ़ चटी हुई । बाज़ार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब ।

रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही । मोर्चाबंदी हो गई और दोनों सतर्क । बिल्ली फँसाने का कठघरा आया; उसमें दूध, चूहे, मलाई और बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली । इधर कबरी ने सरगर्मी दिखाई । अभी तक वह रामू की बहू से डरती थी पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासले पर कि रामू की बहू उसे हाथ न लगा सके ।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू का घर में रहना मुश्किल हो गया । उसे मिलती थीं - सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन ।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई । पिश्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में डाले गए, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे में एक ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके । रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई ।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अंदाजी और देखा कि रामू की बहू पान लगा रही है । पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई । कबरी

ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा, कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर ।

आवाज़ रामू की बहू के कान पर पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी । क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है । रामू की बहू को देखते ही कबरी चंपत ।



रामू की बहू पर खून सवार हो गया । न रहे बाँस न बजे बाँसुरी । रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली । रातभर उसे नींद न आई कि किस दाँव से कबरी पर वार किया जाए कि वह ज़िंदा न बचे । यही पड़े-पड़े सोचती रही ।

सुबह हुई और वह देखती है, कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है ।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी । कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई । रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे में दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई । साथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी है । मौका हाथ में आ गया । सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया । कबरी न हिली, न डुली, न चीखी और न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई ।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं । रामू की बहू सिर झुकाए हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही थी ।



महरी बोली, "अरे राम, बिल्ली तो मर गई । माँजी, बिल्ली की हत्या ब[illegible] से हो गई, यह तो बुरा हुआ ।"

मिसरानी बोली, "माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी

की हत्या बराबर है । हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी ।''

सासजी बोलीं, ''हाँ, ठीक तो कहती है, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना ही खा सकता है, बहू यह क्या कर डाला... ?''

महरी ने कहा, ''फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुला लाऊँ ?''

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई । पड़ोस की औरतों का रामू के घर ताँता बँध गया । चारों ओर से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाए बैठी रही ।

पंडित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे । खबर पाते ही वे उठ गए । पंडिताइन से मुसकराते हुए बोले, ''भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली । प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा ।''

पंडित परमसुख चौबे छोटे से-मोटे से आदमी थे । लंबाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच, चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँची हुई ।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक वाले पंडितों को ढूँढ़ा जाता था तो पंडित परमसुख को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था ।

पंडित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ । पंचायत बैठी — सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पंडित परमसुख । बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति कर रही थीं ।

किसनू की माँ ने कहा, ''पंडितजी बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?''

पंडित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा, ''बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बताया जा सकता, वह मुहूर्त भी मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है ।''

''यही कोई सात बजे सुबह,'' मिसरानी ने कहा । पंडित परमसुख ने पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा । चेहरे पर धुँधलापन आया । माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गंभीर हो गया, ''हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है । रामू की माँ ! यह बड़ा बुरा हुआ !''

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गए, ''तो फिर पंडित जी, अब क्या होगा आप ही बतलाएँ ।'' पंडित परमसुख मुसकराए, ''रामू की माँ, चिंता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित में सब कुछ ठीक हो जाएगा ।'' रामू की माँ ने कहा, ''पंडितजी, इसलिए तो आपको बुलाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाए ।''

''क्या किया जाए !... यही एक सोने की बिल्ली बनाकर बहू से दान करवा दी जाए । जब तक बिल्ली न दी जाएगी तब तक घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन पाठ हो जाए ।''

छन्नू की दादी-''हाँ और क्या, पंडित ठीक तो कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाए और पाठ फिर हो जाए ।''



रामू की माँ के कहा, "तो पंडितजी, कितने तोले की बिल्ली बनाई जाए ?"

पंडित परमसुख मुसकराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "कितने तोले की बनवाई जाए ? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए । लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही । सो रामू की माँ ! बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हाँ कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा ।" रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पंडित परमसुख की ओर देखा, "अरे बाप रे ! इक्कीस तोला सोना ! पंडितजी, यह तो बहुत है । तोलेभर की बिल्ली से काम न चलेगा ?"

पंडित परमसुख हँस पड़े, "रामू की माँ, एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे, रुपए का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है । इसमें इतना लोभ ठीक नहीं ।"



मोल-तोल शुरू हुआ, मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया ।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई । पंडित परमसुख ने कहा, "इसमें क्या मुश्किल बात है । हम लोग किस दिन के लिए हैं । रामू की माँ ! मैं पाठ कर दिया करूँगा । पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना ।"



"पूजा का सामान कितना लगेगा ?"

"अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौं और पाँच मन चना, चार पंसेरी घी और

मनभर नमक भी लगेगा । बस इतने से काम चल जाएगा ।''

''अरे बाप रे ! इतना सामान, पंडितजी इसमें तो डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जाएगा ।'' रामू की माँ ने रुआँसी होकर कहा ।

''फिर इतने से कम में तो काम न चलेगा । बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो । यह तो प्रायश्चित है, कोई हँसी खेल थोड़े ही है और जैसी जिसकी मर्यादा, प्रायश्चित में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है । आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं । अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है ।''

पंडित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा, ''पंडितजी ठीक तो कहते हैं । बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए ।''

छन्नू की दादी ने कहा, ''और नहीं तो क्या, दान-पुण्य से ही पाप कटते हैं । दान-पुण्य में किफ़ायत ठीक नहीं ।''

मिसरानी ने कहा, ''और फिर माँजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे । इतना खर्च कौन-सा आप लोगों को अखरेगा ।''

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा — सभी पंच पंडितजी के साथ । पंडित परमसुख मुसकरा रहे थे । उन्होंने कहा, ''रामू की माँ, एक ओर तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी ओर तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च है, सो उससे मुँह न मोड़ो ।''

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा, ''अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा ।'' पंडित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले, ''रामू की माँ ! यह तो खुशी की बात है, अगर

तुम्हें अखरता हो तो न करो, मैं चला ।'' इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा ।

''अरे पंडितजी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता, बेचारी को कितना दुख है । बिगड़ो न ।''

रामू की माँ ने पंडितजी के पैर पकड़े - और पंडितजी ने अब जमकर आसन जमाया ।

''और क्या हो ?''

''इक्कीस दिन पाठ के इक्कीस रुपए और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।'' कुछ रुककर पंडित परमसुख ने कहा, ''सो इसकी चिंता न करो, मैं अकेला दोनों समय भोजन कर लूँगा और अकेले भोजन से पाँच ब्राह्मणों के भोजन का फल मिल जाएगा।''

''यह तो पंडितजी ठीक कहते हैं, पंडितजी की तोंद तो देखो,'' मिसरानी ने मुसकराते हुए पंडितजी पर व्यंग्य किया ।

''अच्छा तो प्रायश्चित का प्रबंध कराओ । रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ — और देखो, पूजा के लिए... ।''

पंडितजी की बात खत्म भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई और सब लोग चौंक उठे । रामू की माँ ने घबराकर कहा, ''अरी क्या हुआ री ?''

महरी ने लड़खड़ाते हुए कहा-''माँजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई।''

- भगवती चरण वर्मा

सोचो और बताओ

1. रामू की बहू कबरी बिल्ली से क्यों परेशान थी ?
2. बहू ने बिल्ली को मारने की क्या योजना बनाई ?
3. पंडित परमसुख कौन थे ? प्रायश्चित का उन्होंने क्या उपाय बताया ?
4. क्या पंडित परमसुख का स्वार्थ सिद्ध हो सका ? यदि नहीं, तो क्यों ?

सीखो-सिखाओ

आज भी बिल्ली का रास्ता काटना, छींक मारना, किसी के हाथों बिल्ली मरना आदि मान्यताओं पर लोग विश्वास करते हैं इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं ? पता लगाओ ।

8. तीन भिखारी

गुल्लू, शानू, बबलू	- बाल भिखारी
व्यक्ति	- धनी एवं विद्वान व्यक्ति
चौकीदार	- धनी व्यक्ति के भवन पर नियुक्त पहरेदार

[पर्दा उठता है तो एक नगर का दृश्य सामने आता है । सड़क पर लोग आ-जा रहे हैं । सड़क के दोनों ओर मकानों की पंक्तियाँ हैं । एक मकान के सामने तीन बच्चे उदास मुद्रा में खड़े हैं । दोपहर ढल गई है । दिन के लगभग तीन बजे हैं । तीनों बातें कर रहे हैं]

गुल्लू - बहुत भूख लगी है शानू ! क्या करें ?

शानू - भूख तो मुझे भी लगी है । पर खाना मिलेगा कहाँ ?

गुल्लू - अब तक तो ऐसा कभी नहीं हुआ । कुछ न कुछ तो मिल ही जाता था ।

शानू - आज तो बहुत मनहूस दिन है । आज तो कहीं से कुछ नहीं मिला ।

गुल्लू - ऐसा लगता है कि सारे शहर ने भीख न देने का फैसला कर लिया है ।

शानू - लगता तो यही है ।

गुल्लू - यार ! यह जो बबलू है न, इसने शुरू से ही सगुन खराब कर रखा है । *(बबलू की ओर संकेत करते हुए)* यह न तो कुछ बोलता है, न हँसता है, न खेलता है । लोग अब भीख भी चलते-फिरते बोलने वाले भिखारियों को देते हैं, गुमसुम घूमने वालों को नहीं ।

शानू - तुम ठीक कहते हो ।

(तभी बबलू दोनों हाथों से अपना पेट थामकर सड़क के किनारे बैठ जाता है । उसके चेहरे पर पीड़ा का भाव है)

गुल्लू – नहीं जनाब, नहीं। मैं लँगड़ा होकर चलूँगा कैसे ? एक स्थान से दूसरे स्थान पर कैसे जाऊँगा ?

व्यक्ति – अच्छा, मैं तुम्हें पच्चीस हज़ार रुपए दूँगा, तुम अपने दोनों कान मुझे बेच्च दो।

गुल्लू – नहीं...नहीं... यह नहीं हो सकता। इस तरह मैं बहरा हो जाऊँगा। सुनूँगा कैसे ?

व्यक्ति – अगर कान भी नहीं बेच सकते तो अपनी दोनों आँखें बेच दो, इनके दो लाख रुपए तुम्हें दूँगा।

गुल्लू – नहीं, सरकार नहीं ! अंधा बनने की शर्त पर दो लाख नहीं लेने है मुझे।

व्यक्ति – *(ठहाका लगाकर)* अब तुम एक पल को सोचो। जिस आदमी का एक-एक अंग लाखों रुपए मूल्य का हो तब भी वह अपने को निर्धन कहे, भिखारी बनकर घूमे, क्या यह अजीब नहीं लगता ? ईश्वर ने शरीर के सभी अंग काम करने के लिए दिए हैं और तुम इनका प्रयोग न कर लोगों के आगे हाथ पसार रहे हो।

(गुल्लू ने सुना, सिर झुकाया और बाहर निकल आया)

शानू – क्या मिला, बता गुल्लू ?

गुल्लू – इतना मिल गया है भाई, जितना अब तक कहीं से नहीं मिला था। आओ, मेरे साथ ! तुम भी आओ बबलू। अब इन हाथों से, पैरों से और आँखों से काम लेंगे।

आओ...आओ।

–डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

कुछ करने को

राह में भीख माँगने वाले भिखारियों को इस प्रकार की शिक्षा देकर तुम भी उनका जीवन बदलने का प्रयत्न करो।

9. अमर कहानी



उसके घर में पिता थे, माँ थी, बहन थी। वह सभी का दुलारा था। एक दिन की बात है, वह बीमार पड़ा। माँ ने उसका खाना बिलकुल रोक दिया था। पर उसका बार-बार कुछ खाने को माँगना छोटी-सी बहन से नहीं सहा गया। बहन का जी नहीं माना। वह चुपके से गुड़ और चने चुरा लाई और भैया को खिलाने चली। यह बात और है कि उसके बाद भैया का बुखार बढ़ गया। पर वह खिला ही चुकी थी। अपने भाई के थोड़े से संतोष के लिए वह माँ-बाप का गुस्सा सहने को तैयार थी। भाई ने भी गुड़-चने की बात किसी को न बताई और बहन तो बताती ही क्यों ? किसी तरह रोग घटते-घटते बिलकुल समाप्त हो गया। रोग गया और बहन के प्रेम की वह बात सदा के लिए भाई के मन पर अंकित हो गई।

ऐसी एक नहीं, अनेक बातें बहन की, माँ की, पिता की उसके मन में समाई थीं। वह कभी उनसे लड़ता-झगड़ता भी पर आँखों के आँसू और मन के रंग उसके अंतस पर अंकित तस्वीरों को न धो सके, न धुँधला कर सके।

एक दिन ऐसी हवा बही कि मुरझाए हुए मनों में भी नई जान आ गई। एक हवा ऐसी होती है जो निर्जीव मनुष्यों में भी नई उमंग भर देती है। बड़ा भारी जलूस निकला, कौमी झंडे का जलूस था। पर बादशाह की आज्ञा हुई कि झंडा लेकर कोई जलूस न निकाले। शहर में आतंक छा गया। बड़ा निर्दयी था वह बादशाह।

"बड़ा आया बादशाह ! क्यों न निकले जलूस ? क्यों न निकले झंडा ?" भाई ने बहन से कहा, "बादशाह की आज्ञा है कि जलूस न निकले।"

बहन क्या कहती ? उसने सुन लिया फिर बोली, "कौन है वह बादशाह ?" भैया ने कहा, "ऊँह, होगा कोई।" फिर पूछा, "क्यों न निकले जलूस, क्यों न निकले झंडा ?" भाई बोला, "हमारा देश बादशाह का गुलाम जो है।" उसके स्वर में कटुता थी। उत्तर था, "तो जलूस निकले ! झंडा निकले !" यह उत्तर था या निश्चय ?

झंडे की तैयारी होने लगी। बहन ने अपनी पुरानी ओढ़नी फाड़कर झंडे का कपड़ा बना दिया। भाई ने अपने खेलने के डंडे में उसे बाँधा। रंग भी लाल-पीले चढ़ गए। अब भाई झंडा लेकर चला।

"अरे भाई ! कहाँ जाते हो, हम भी साथ चलेंगे।"

बहन ने आग्रह किया।

"पर बहन बहुत दूर जाना है, तुम थक जाओगी।"

"नहीं भैया।"

"नहीं बहन।"

"जलूस कौन बनाएगा ? तुम झंडा उठाना, हम जलूस बनाकर चलेंगे पीछे-पीछे।"

"नहीं बहन, तुम जलूस नहीं, तुम एक काम करो, हमको रोली का तिलक लगाकर विदा करो। जैसे कोई राजकुमारी राजकुमार भाई को विदा करती है।"

"राजकुमारी !"

"हाँ, राजकुमारी।"

बहन ने खुशी की किलकारी के साथ ताली दी और दौड़कर एक थाली में थोड़ी-सी रोली और चावल सजा लाई। एक दीवा भी जलाकर रख लाई। भाई की आरती उतारनी थी। बहन ने मुसकराते हुए गंभीरता से भाई के माथे पर रोली का तिलक लगाया, चावल बिखराए, आरती की और पान का बीड़ा खाने को दिया। पगली ने सुन रखा था कि राजकुमारियाँ वीर की विदाई पर पान का बीड़ा भी देती हैं।

भाई ने बहन के पैर छुए और विदा ली। बहन ने भाई के सिर पर हाथ फेरे और बलैया लीं। अब वह झंडा लेकर चला।

बहन दरवाज़े पर खड़ी देखती रह गई।

दूर तक भाई के लहराते झंडे को जाते देखती रही वह। बहुत दूर जाने पर बादशाह के सिपाहियों ने झंडे वाले को रोका। वह नहीं रुका तो बादशाह के सिपाहियों ने गोली चला दी। वह गिरा। झंडा उसके हाथ में था।

गोलियाँ चल जाने पर किसकी हिम्मत थी कि कोई सड़क पर आता और घायल को सँभालता। पर बहन ने उसको गिरते देख लिया। न जाने उसका दिल क्यों पहले से ही धक-धक कर

रहा था । वह दौड़ पड़ी । अकेली दौड़ती जा पहुँची । भाई खून से लथपथ पड़ा था । उसने पुकारा – "भैया ! भैया!"

भाई के प्राण मानो वह अमृतवाणी सुनकर लौट पड़े । बोला, "तू आई । यह झंडा ले ।" बहन ने झंडा ले लिया । पर भाई चला गया । बहन रोई, पर झंडा हाथ में लिए रही । बादशाह के सिपाही मानो गढ़ जीतकर चले गए थे । अब बहुत से लोग आए । अर्थी उठी । सामने भाई की बहन वही झंडा लिए चल रही थी ।

यह कहानी कहाँ की है ? किसकी है ? हम क्या बताएँ ? यह फ्रांस की राज्य क्रांति की हो सकती है, क्योंकि यह घटना चिरंतन, है, अनंत है । यह जैसे पेरिस में, मास्को में, वैसे ही जबलपुर में हो सकती है । जबलपुर में ? तो क्या उस वीर बालक का नाम था गुलाबसिंह ? हो सकता है ।

– सुभद्रा कुमारी चौहान



सोचो और बताओ

1. बचपन की किस घटना से बहन और भाई का प्यार पता चलता है ?
2. बादशाह ने क्या आज्ञा दी थी ?
3. झंडा बनाने में बहन ने भाई की क्या मदद की ?
4. बहन ने भाई को किस प्रकार विदा किया ?

सीखो-सिखाओ

1. देश की आज़ादी की रक्षा करना हर भारतीय का कर्तव्य है ।
2. देश के गौरव की रक्षा करने वाले कुछ देशभक्तों के नाम बताइए ।

10. हिंदी भाषा - हमारी पहचान

64, दयानंद विहार,
दिल्ली - 110092
7 नवंबर, 1997

प्रिय शुभांगी,

सप्रेम नमस्ते।

आशा है कि तुम सपरिवार कुशलतापूर्वक होगी। तुम्हारा पत्र मिला और मैं उसका उत्तर आज ही दे रही हूँ। तुम्हारे, मन की दुविधा को मैं अच्छी तरह समझती हूँ। बहुत वर्षों तक विदेश में रहने के कारण तुम्हें अपनी मातृभाषा - राष्ट्रभाषा हिंदी समझने में कठिनाई होती है और तुम अंग्रेज़ी भाषा को ही अपनी भाषा समझती हो। इतने वर्षों विदेश में रहने के बाद क्या तुम उसे अपना देश समझ सकीं ? यदि नहीं तो अपने ही देश में रहकर विदेशी भाषा को अपनी भाषा कैसे समझ सकती हो ?

प्रिय सखी ! स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत की अपनी कही जाने वाली एक भाषा का होना अनिवार्य था जो पूरे देशं को एक सूत्र में बाँध सके। हमारे विशाल देश में जहाँ कदम-कदम पर बोली और कोस-कोस पर पानी तक बदल जाता है वहाँ किसी एक भाषा का चुनाव एक कठिन कार्य था। अतः इस कार्य को करने के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसने यह निश्चय किया कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त करने योग्य है। तुम्हारे जैसे कई लोग हैं जो पाश्चात्य सभ्यता में रंगे

होने के कारण अपनी ही भाषा को नहीं समझ पाते । कई लोग तो हिंदी में बोलना-लिखना भी अपमानजनक समझते हैं । मैं तो इतना कहूँगी कि हिंदी भाषा ही हमारी पहचान है । संसार के किसी भी कोने में हम चले जाएँ, हिंदी भाषा से ही हम भारतीय जाने जाएँगे । हिंदी भाषा ही हम सबको एकता के सूत्र में बाँध सकती है । कोई भी देश अपनी भाषा के बल पर ही उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है । भाषा ही उसकी संस्कृति की पहचान है । हमारी भाषा का साहित्य अत्यंत समृद्ध और ज्ञानयुक्त है । अब तो सरकार भी इसका प्रचार व प्रसार कर रही है ।

मेरे कहने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अंग्रेज़ी भाषा में कोई कमी है पर अपने देश में रहकर यदि तुम हिंदी भाषा के प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदलोगी तो उचित न होगा । आशा है, अब तुम हिंदी में सोचोगी, हिंदी में बोलोगी और हिंदी में लिखना आरंभ करोगी । दूरदर्शन पर प्रसारित हिंदी के समाचार सुना करो तथा अच्छे लेखकों की पुस्तकें पढ़ा करो । इससे हिंदी बोलने और लिखने में तुम्हें सहायता मिलेगी । घर में मेरी सबको नमस्ते कहना । पत्र का उत्तर हिंदी में शीघ्र देना ।

तुम्हारी सखी,

रुचिका

सीखो-सिखाओ

हिंदी भाषा ही हमारी पहचान है । कोई भी देश अपनी भाषा के बल पर ही उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है ।

11. दुख का अधिकार



मनुष्य की पोशाकें उन्हें विभिन्न श्रेणियों में बाँट देती हैं । प्राय: पोशाक ही समाज में उसका अधिकार और दर्जा निश्चित करती है । यह हमारे लिए अनेक बंद दरवाज़े खोल देती है, परंतु कभी ऐसी भी परिस्थितियाँ आ जाती हैं कि हम ज़रा नीचे झुककर समाज की निचली श्रेणियों के सुख-दुख को समझना चाहते हैं । उस समय यह पोशाक ही बंधन और अड़चन बन जाती है ।

बाज़ार में फुटपाथ पर कुछ खरबूजे डलिया में और कुछ ज़मीन पर बिक्री के लिए रखे जान पड़ते थे । खरबूजे के समीप एक अधेड़ उम्र की औरत बैठी रो रही थी । खरबूजे बिक्री के लिए थे, परंतु उन्हें खरीदने के लिए कोई कैसे आगे बढ़ता ? खरबूजों को बेचने वाली तो कपड़े से मुँह छिपाए सिर को घुटनों पर रखे फफक-फफककर रो रही थी ।

पड़ोस की दुकानों के तख्तों पर बैठे या बाज़ार में खड़े लोग घृणा से उस स्त्री के संबंध में बात कर रहे थे । उस स्त्री का रोना देखकर मन में एक व्यथा-सी उठी पर उसके रोने का कारण जानने का उपाय क्या था । फुटपाथ पर उसके समीप बैठने में मेरी पोशाक एक रुकावट बन खड़ी हो गई । एक आदमी ने घृणा से एक ओर थूकते हुए कहा, "क्या ज़माना है ! जवान लड़के को मरे पूरा दिन भी नहीं बीता और यह दुकान लगाकर बैठी है ।" सामने के फुटपाथ पर खड़े एक आदमी ने दियासलाई की तीली से कान खुजाते हुए कहा, "अरे ! इन लोगों का क्या है ? ये लोग तो रोटी के टुकड़े पर जान देते हैं । इनके लिए बेटा-बेटी, खसम-लुगाई, धर्म-ईमान सब रोटी का टुकड़ा है ।"

परचून की दुकान पर बैठे लालाजी ने कहा, "अरे भाई, इनके लिए मरे जिए का कोई मतलब न हो पर दूसरे के धर्म-ईमान का तो ख्याल करना चाहिए । जवान बेटे के मरने पर तेरह दिन का सूतक होता है और यह यहाँ सड़क पर बाज़ार में आकर खरबूजे बेचने बैठ गई है । क्या अँधेर है !"

पास-पड़ोस की दुकानों से पूछने पर पता लगा – उसका तेईस बरस का जवान लड़का था । घर में उसकी बहू और पोता-पोती हैं । लड़का शहर के पास डेढ़ बीघा भर जमीन में कछियारी करके परिवार का निर्वाह करता था । खरबूजों की डलिया बाज़ार में पहुँचाकर कभी लड़का स्वयं सौदे के पास बैठ जाता, कभी माँ बैठ जाती । लड़का परसों सुबह मुँह-अँधेरे परे खरबूजे चुन रहा था । गीली मेड़ की तरावट में विश्राम करते हुए एक साँप पर लड़के का पैर पड़ गया । साँप ने लड़के को डस लिया । लड़के की बुढ़िया माँ बावली होकर ओझा को बुला लाई । झाड़ना-फूँकना हुआ । नागदेव की पूजा हुई । पूजा के लिए

दान-दक्षिणा चाहिए । घर में जो कुछ आटा और अनाज था, दान-दक्षिणा में उठ गया । माँ, बहू और बच्चे भगवाना से लिपट-लिपटकर रोए, पर भगवाना जो एक बार चुप हुआ तो फिर न बोला । सर्प के विष से उसका सारा बदन काला पड़ गया था ।

जिंदा आदमी नंगा भी रह सकता है । परंतु मुर्दे को नंगा कैसे विदा किया जाए ? उसके लिए तो बजाज की दुकान से नया कपड़ा लाना ही होगा । चाहे उसके लिए माँ के हाथों के छन्नी-कंगन ही क्यों न बिक जाएँ ।

भगवाना परलोक चला गया । घर में जो कुछ चूनी-भूसी थी सो उसे बिदा करने में चली गई । बाप नहीं रहा तो क्या ! बच्चे सुबह उठते ही भूख से बिलबिलाने लगे । दादी ने उन्हें खाने के लिए खरबूजे दे दिए लेकिन बहू का बदन बुखार से तवे की तरह तप रहा था । अब बेटे के बिना बुढ़िया को दुअन्नी-चवन्नी भी कौन उधार देता ! बुढ़िया रोते-रोते और आँखें पोंछते-पोंछते भगवाना के बटोरे हुए खरबूजे डलिया में समेटकर बाज़ार की ओर चली । और चारा भी क्या था ? बुढ़िया खरबूजे बेचने का साहस करके आई थी परंतु सिर पर चादर लपेटे, सिर को घुटनों पर टिकाए हुए फफक-फफककर रो रही थी । कल जिसका बेटा चल बसा, आज वह बाज़ार में सौदा बेचने चली है । हाय रे पत्थर दिल !

मैं उस पुत्र-वियोगिनी के दुख का अंदाजा लगाने के लिए पिछले साल अपने पड़ोसी के पुत्र की मृत्यु से दुखी माता की बात सोचने लगा । वह संभ्रांत महिला पुत्र की मृत्यु के बाद तीन मास तक पलंग से उठ न सकी थी । उन्हें 15-15 मिनट बाद वियोग से मूर्च्छा आ जाती थी । दो-दो डॉक्टर हरदम सिरहाने

बैठे रहते थे । हरदम सिर पर बरफ़ रखी जाती थी । शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र शोक से द्रवित हो उठे थे ।

जब मन को सूझ का रास्ता नहीं मिलता तो बेचैनी से कदम तेज़ हो जाते हैं । उसी हालत में मुँह ऊपर उठाए, राह चलतों से ठोकरें खाता मैं चला जा रहा था ।

सोच रहा था ..... शोक करने, गम मनाने के लिए भी सहूलियत चाहिए और दुखी होने का भी एक अधिकार होता है ।

– यशपाल



सोचो और बताओ

1. पोशाक कब बंधन और अड़चन बन जाती है ? और क्यों ?
2. आपके विचार से बाज़ार के लोगों का खरबूजे बेचने वाली को घृणा की दृष्टि से देखना कहाँ तक उचित था ?
3. भगवाना की माँ के दुख का अंदाजा लगाने के लिए लेखक ने अपने पड़ोस की पुत्र वियोगिनी का उल्लेख क्यों किया है ?
4. "जिंदा आदमी नंगा भी रह सकता है परंतु मुर्दे को नंगा कैसे विदा किया जाए"– इस कथन में लेखक क्या कहना चाहता है ।

सीखो-सिखाओ

मनुष्य की पोशाक उसे विभिन्न श्रेणियों में बाँट देती है । क्या तुम इस बात से सहमत हो ? क्या कभी तुम्हारी पोशाक या मान-मर्यादा किसी असहाय की सहायता करने में बाधक बनी है ? अपना अनुभव लिखो ।

ऐसे समाज की कल्पना करो जहाँ कोई मनुष्य स्वार्थी नहीं है । जहाँ इन्सान एक दूसरे की मदद के लिए सदैव तत्पर हों ।

12. मदर टेरेसा



"अभी उस दिन मैंने स्वप्न देखा – मैं स्वर्ग के द्वार पर खड़ी थी। ईश्वर ने कहा—यहाँ तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। अभी तुम धरती पर जाओ, उन झुग्गी-झोंपड़ियों के भूखे-अनाथ, अपाहिज बच्चों के पास जिन्हें अपना कहने वाला कोई नहीं है।"

ये महान महिला थीं – सेवा धर्म साधिका 'मदर टेरेसा'। 5 सितंबर, 1997 की सुबह दिल का दौरा पड़ने से इनकी मृत्यु हो गई।

मदर टेरेसा का जन्म 26 अगस्त, 1910 ई. को दक्षिण युगोस्लाविया के स्कोपजें नामक स्थान में हुआ था। उनके बचपन का नाम एगनीस गोनक्षा बेयाय था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद 18 वर्ष की आयु में एगनीस ने आइरिश धर्म परिवार में शामिल होने का निश्चय किया और अपना जीवन दीन-हीन अनाथों की सेवा में समर्पित कर दिया। 1928 ई. के नवंबर मास में एगनीस दार्जिलिंग के लॉरेटो कॉन्वेंट में अध्यापिका बनकर भारत आ गईं। दार्जिलिंग के प्राकृतिक दृश्यों ने उन्हें अपनी ओर

आकर्षित किया । पर उससे भी बढ़कर देश के लाखों दीन-दुखियों की कराह का उनके हृदय पर प्रभाव पड़ा । वे भारत में ही रहने लगीं । 1931 में उन्होंने अपना नाम बदलकर 'टेरेसा' रखा । गरीबों के लिए माँ की ममता को समेटे हुए, ममत्व को प्रसाद के रूप में हर प्राणी को बाँटती हुई वे सारे संसार में विख्यात हो गईं ।

सन 1946 ई. में उनकी जीवनधारा में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया । पटना में नर्सिंग शिक्षा लेने के बाद वे कलकत्ता लौट आईं । तब से उन्होंने अपना जीवन दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अपाहिजों, रोगियों तथा पीड़ितों की सेवा में लगा दिया ।

प्रातः सात बजे वे घर से निकलकर झोंपड़पट्टियों में रहने वाले गरीबों तक पहुँचतीं और सामर्थ्य अनुसार उनकी ज़रूरतें पूरी करतीं । सहज प्यार और दुलार की भावना के साथ परम प्रभु में गहरी आस्था लिए रवींद्रनाथ टैगोर के अमर गीत 'एकला चलो रे' के अनुसार वे अकेली ही कर्तव्य में जुट गईं । संघर्ष के परिणामस्वरूप उनके साधन भी बढ़े और कार्य क्षेत्र का भी विस्तार हुआ । 1952 ई. में उन्होंने कलकत्ता में बूढ़ों को सहारा देने हेतु पहला 'निर्मल हृदय होम' स्थापित किया । मदर और उनके सहयोगियों ने कलकत्ता के पास टीटागढ़ में कुष्ठाश्रम खोला जहाँ इलाज के साथ-साथ रोगियों को कपड़े बुनना, पट्टियाँ बनाना, दवाओं के लिए लिफ़ाफ़े तैयार करना, रस्सी तैयार करना आदि कई कार्य भी सिखाए जाते हैं । अनाथ स्त्रियों को रोज़गार देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जाता है ।

जनता ने मदर की सेवाओं का पूरा-पूरा सम्मान किया । उन्हें पोप जॉन पॉल द्वारा 'शांति पुरस्कार' प्रदान किया गया ।

विश्वविद्यालय ने 'देशिकोत्तम' की उपाधि से विभूषित किया। भारत सरकार ने उन्हें 1962 में 'पद्मश्री' की उपाधि दी। 1979 में 'नोबल पुरस्कार' से सम्मानित किया। मदर की ख्याति देश-विदेश की सीमाओं को लाँघकर सारे संसार में फैल गई।

आज मदर टेरेसा हम सबके बीच नहीं है परंतु उनके द्वारा दिखाई गई ज्योति अवश्य हमारा मार्ग प्रशस्त करेगी। उनके शब्द आज भी गूँज रहे हैं- "गरीबों से प्यार करो, उनके लिए काम करो, तुम्हारा स्पर्श उनके लिए नियामत है। उन्हें छूकर देखो और समझो।"

उनका जीवन अपना नहीं अपितु दूसरों का जीवन था। दीन-दुखियों की सेवा को वे परमपिता की दी हुई आज्ञा मानकर चलती थीं। वे सच्चे अर्थ में माँ थीं, एक तपस्विनी थीं।

सोचो और बताओ

1. मदर टेरेसा का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
2. मदर टेरेसा द्वारा चलाए गए 'निर्मल हृदय होम' क्या कार्य करते हैं ?
3. गरीबों के लिए माँ के मन में क्या विचार थे ?
4. मदर टेरेसा को किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया ?

सीखो-सिखाओ

नर की सेवा ही नारायण की सेवा है।

अपने शहर के किसी निर्मल हृदय होम में जाओ और देखो वहाँ पर किस प्रकार विकलांग, अनाथ और दीन-दुखियों की देखभाल की जाती है।

13. चीफ़ की दावत



आज मिस्टर शामनाथ के घर चीफ़ की दावत थी । शामनाथ और उनकी धर्मपत्नी को पसीना पोंछने की फुर्सत न थी । पत्नी ड्रैसिंग गाउन पहने, उलझे हुए बालों का जूड़ा बनाए, मुँह पर फैली हुई सुर्खी और पाउडर को मले और मिस्टर शामनाथ सिगरेट पर सिगरेट फूँकते, घबराहट में चीज़ों की फेहरिस्त हाथ में थामे, एक कमरे से दूसरे कमरे में आ जा रहे थे ।

आखिर पाँच बजते-बजते तैयारी मुकम्मल होने लगी । कुर्सियाँ, मेज़, तिपाइयाँ , नैपकिन, फूल सब बराभदे में पहुँच गए । ड्रिंक का इंतजाम बैठक में करा दिया गया । अब घर का सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा । तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गई, 'माँ' का क्या होगा ?

इस बात की ओर न उनका और न उनकी कुशल गृहिणी का ध्यान गया था । मिस्टर शामनाथ, श्रीमती की ओर घूमकर अंग्रेज़ी में बोले, "माँ का क्या होगा ?"

श्रीमती काम करते-करते ठहर गईं, और थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोलीं, "इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो । रातभर बेशक वहीं रहें, कल आ जाएँ ।"

शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पलभर सोचते रहे, फिर सिर हिलाकर बोले, "नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना-जाना यहाँ फिर से शुरू हो । पहले ही बड़ी मुश्किल से बंद किया था । माँ से कहो कि जल्दी खाना खाकर शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ । मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे इससे पहले ही अपने काम से निबट लें ।"

सुझाव ठीक था । दोनों को पसंद आया । मगर फिर सहसा श्रीमती बोल उठीं, "जो वह सो गईं और नींद में खर्राटे लेने लगीं, तो ? साथ ही तो बरामदा है, जहाँ लोग खाना खाएँगे ।"

"तो इन्हें कह देंगे कि अंदर से दरवाज़ा बंद कर लें । मैं बाहर से ताला लगा दूँगा या माँ को कह देता हूँ कि अंदर जाकर सोएँ नहीं, बैठी रहें और क्या ?"

"और जो सो गईं तो ? डिनर का क्या मालूम, कब तक चले । ग्यारह-ग्यारह बजे तक तो तुम ड्रिंक ही करते रहते हो ।"

शामनाथ खीज उठे, हाथ झटकते हुए बोले, "अच्छी भली यह भाई के पास जा रही थीं । तुमने यूँ ही खुद अच्छा बनने के लिए बीच में टाँग अड़ा दी ।"

"वाह ! तुम माँ और बेटे की बातों में मैं क्यों बुरी बनूँ ? तुम जानो और वह जानें ।"

मिस्टर शामनाथ चुप रहे । यह मौका बहस का न था, समस्या का हल ढूँढ़ने का था । उन्होंने घूमकर माँ की कोठरी की ओर देखा । कोठरी का दरवाज़ा बरामदे में खुलता था ।

बरामदे की ओर देखते हुए झट से बोले, "मैंने सोच लिया है," और उन्हीं कदमों माँ की कोठरी के बाहर जा खड़े हुए। माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी, दुपट्टे में मुँह-सिर लपेटे माला जप रही थीं। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़क रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब घर पर आ रहा था, सारा काम सुभीते से चल जाए।

"माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साढ़े सात बजे आ जाएँगे।"

माँ ने धीरे से मुँह पर से दुपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा, "आज मुझे खाना नहीं खाना है, बेटा, तुम तो जानते हो, मांस मछली बने, तो मैं कुछ नहीं खाती।"

"जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निबट लेना।"

"अच्छा बेटा।"

"और माँ, हम लोग पहले बैठक में बैठेंगे। उतनी देर तुम यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम यहाँ आ जाएँ, तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना।" माँ अवाक बेटे का चेहरा देखने लगीं। फिर धीरे से बोलीं, "अच्छा बेटा।"

"और माँ आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है।"

माँ लज्जित-सी आवाज़ में बोलीं, "क्या करूँ बेटा! मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ, नाक से साँस नहीं ले सकती।" मिस्टर शामनाथ ने इंतज़ाम तो कर दिया, फिर भी उनकी उधेड़बुन समाप्त नहीं हुई। जो चीफ़ अचानक उधर आ निकला, तो? आठ-दस मेहमान होंगे। देसी अफसर, उनकी स्त्रियाँ होंगी, कोई भी गुसलखाने की तरफ़ जा सकता है। क्षोभ और क्रोध में वह झुँझलाने लगे। एक कुर्सी को उठाकर

बरामदे में कोठरी के बाहर रखते हुए बोले, "आओ माँ, इस पर ज़रा बैठो तो।"

माँ माला सँभालती, पल्ला ठीक करती उठीं और धीरे से कुर्सी पर आकर बैठ गईं।

"यूँ नहीं माँ, टाँगें ऊपर चढ़ाकर नहीं बैठते। यह खाट नहीं है।"

माँ ने टाँगें नीचे उतार लीं।

"और खुदा के वास्ते नंगे पाँव नहीं घूमना। न ही वह खड़ाऊँ पहनकर सामने आना। किसी दिन तुम्हारी वह खड़ाऊँ उठाकर मैं बाहर फेंक दूँगा।"

माँ चुप रहीं।

"कपड़े कौन-से पहनोगी, माँ ?"

"जो हैं, वही पहनूँगी, बेटा ! जो कहो, पहन लूँ।"

मिस्टर शामनाथ सिगरेट मुँह में रखे, फिर अधखुली आँखों से माँ की ओर देखने लगे और माँ के कपड़ों की सोचने लगे। शामनाथ को चिंता थी कि अगर चीफ़ का साक्षात माँ से हो गया तो कहीं लज्जित नहीं होना पड़े। माँ को सिर से पाँव तक देखते हुए बोले, "तुम सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहन लो। पहन के आओ तो, ज़रा देखूँ।"

माँ सफ़ेद कमीज़ और सफ़ेद सलवार पहनकर बाहर निकलीं। छोटा-सा कद, सफ़ेद कपड़ों में लिपटा, छोटा-सा सूखा हुआ शरीर, धुँधली आँखें, केवल सिर के आधे झड़े हुए बाल पल्ले की ओट में छिप पाए थे। पहले से कुछ ही कम कुरूप नज़र आ रही थीं।

"चलो, ठीक है । कोई चूड़ियाँ-वूड़ियाँ हों, तो वह भी पहन लो । कोई हर्ज नहीं ।"

"चूड़ियाँ कहाँ से लाऊँ, बेटा ? तुम तो जानते हो, सब जेवर तुम्हारी पढ़ाई में बिक गए ।"

यह वाक्य शामनाथ को तीर की तरह लगा ।

तिनककर बोले, "यह कौन-सा राग छेड़ दिया, माँ । सीधा कह दो, नहीं है जेवर बस । इससे पढ़ाई-वढ़ाई का क्या संबंध है । जो जेवर बिका, तो कुछ बनकर आया हूँ, निरा लंडूरा तो नहीं लौट आया । जितना दिया था, उससे दुगना ले लेना ।"

"मेरी जीभ जल जाए, बेटा ! तुमसे जेवर लूँगी ? मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया । जो होते, तो लाख बार पहनती ।"

साढ़े पाँच बज चुके थे । अभी मिस्टर शामनाथ को खुद भी नहा-धोकर तैयार होना था । श्रीमती कब की अपने कमरे में जा चुकी थीं । शामनाथ जाते हुए एक बार फिर माँ को हिदायत करते गए, "माँ, रोज़ की तरह गुमसुम बन के नहीं बैठी रहना । अगर साहब इधर आ निकलें और कोई बात पूछें तो ठीक तरह से बात का जवाब देना ।"

"मैं न पढ़ी, न लिखी बेटा ! मैं क्या बात करूँगी ? तुम कह देना, माँ अनपढ़ है, कुछ जानती-समझती नहीं । वह नहीं पूछेगा ।"

सात बजते-बजते माँ का दिल धक-धक करने लगा । अगर चीफ़ सामने आ गया और उसने कुछ पूछा, तो वह क्या जवाब देगी ।

एक कामयाब पार्टी वह है, जिसमें ड्रिंक कामयाबी से चल जाए । शामनाथ की पार्टी सफलता के शिखर चूमने लगी । वार्तालाप उसी रौ में बह रहा था, जिस रौ में गिलास भरे जा रहे

थे । कहीं कोई रुकावट न थी, कोई अड़चन न थी । साहब को विहस्की पसंद आई थी । मेमसाहब को पर्दे पसंद आए थे, सोफा कवर का डिजाइन पसंद आया था, कमरे की सजावट पसंद आई थी । इससे बढ़कर और क्या चाहिए था । इसी रौ में पीते-पिलाते साढ़े दस बज गए । वक्त गुजरते पता ही न चला ।

आखिर सब लोग अपने-अपने गिलासों में से आखिरी घूँट पीकर खाना खाने के लिए उठे और बैठक से बाहर निकले । आगे-आगे शामनाथ रास्ता दिखाते हुए, पीछे चीफ़ और दूसरे मेहमान ।

बरामदे में पहुँचते ही शामनाथ सहसा ठिठक गए । जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे उनकी टाँगें लड़खड़ा गईं, और क्षणभर में सारा नशा हिरन होने लगा । बरामदे में, कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यों बैठी थीं । मगर दोनों पाँव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ झूल रहा था । मुँह से लगातार गहरे खर्राटों की आवाज़ें आ रही थीं । जब कुछ देर बाद सिर टेढ़ा होकर एक तरफ़ को थम जाता, तो खर्राटे और भी गहरे हो उठते । और फिर जब झटके से नींद टूटती, तो सिर फिर दाएँ से बाएँ झूलने लगता । पल्ला सिर पर से खिसक आया था, और माँ के झड़े हुए बाल आधे गंजे सिर पर अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे ।

देखते ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे । जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें और उन्हें कोठरी में धकेल दें । मगर ऐसा करना संभव न था । चीफ़ और बाकी मेहमान पास खड़े थे । माँ हड़बड़ाकर उठ बैठीं । सामने खड़े इतने लोगों को देखकर ऐसा घबराईं कि कुछ कहते न बना । झट से पल्ला सिर पर रखती हुई खड़ी हो गईं और ज़मीन को देखने लगीं ।

"माँ ! तुम जाकर सो जाओ, तुम क्यों इतनी देर तक जाग रही थीं ?" और खिसियायी हुई नज़रों से शामनाथ चीफ़ के मुँह की ओर देखने लगे ।

चीफ़ के चेहरे पर मुसकराहट थी । वह वहीं खड़े-खड़े बोले, "नमस्ते !"

माँ ने झिझकते हुए, अपने में सिमटते हुए दोनों हाथ जोड़े, मगर एक हाथ दुपट्टे के अंदर माला को पकड़े हुए था । ठीक तरह से नमस्ते भी न कर पाईं । शामनाथ इस पर भी खिन्न हो उठे ।

इतने में चीफ़ ने अपना दायाँ हाथ, हाथ मिलाने के लिए माँ के आगे किया, माँ और भी घबरा उठीं ।

"माँ, हाथ मिलाओ ।"

पर हाथ कैसे मिलातीं ? दाएँ हाथ में तो माला थी । घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दाएँ हाथ में रख दिया । शामनाथ दिल हां दिल में जल उठे । सभी खड़ी स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं । "यूँ नहीं माँ ! तुम तो जानती हो, दायाँ हाथ मिलाया जाता है । दायाँ हाथ मिलाओ ।"



मगर तब तक चीफ़ माँ का बायाँ हाथ ही बार-बार हिलाकर कह रहे थे — "हाऊ डू यू डू ?"

"कहो माँ- मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।"

माँ कुछ बड़बड़ाईं।

"माँ, कहती हैं, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हाऊ डू यू डू।"

माँ धीरे से सकुचाते हुए बोली- "हौ डू डू ..."

एक बार फिर कहकहा उठा।

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे और माँ सिकुड़ी जा रही थीं। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।

शामनाथ अंग्रेज़ी में बोले, "मेरी माँ गाँव की रहने वाली हैं। उमर भर गाँव में रही हैं। इसलिए आपसे शरमाती हैं।"

साहब इस पर खुश नज़र आए। बोले, "सच ? मुझे गाँव के लोग बहुत पसंद हैं, तब तो तुम्हारी माँ गाँव के गीत और नाच भी जानती होंगी ?" चीफ़ खुशी से सिर हिलाते हुए माँ को टकटकी बाँध देखने लगे।

"माँ, साहब कहते हैं कोई गाना सुनाओ। कोई पुराना गीत ! तुम्हें तो कितने ही याद होंगे।"

माँ धीरे से बोलीं— "मैं क्या गाऊँगी, बेटा। मैंने कब गाया है ?"

"वाह माँ ! मेहमान का कहा भी कोई टालता है ? साहब ने इतनी रीझ से कहा है, नहीं गाओगी, तो साहब बुरा मानेंगे।"

"मैं क्याँ गाऊँ बेटा ! मुझे क्या आता है ?"

माँ कभी दीन दृष्टि से बेटे के चेहरे को देखती, कभी पास खड़ी बहू के चेहरे को।

इतने में बेटे ने गंभीर आदेश भरे लहजे में कहा— ''माँ !''

इसके बाद हाँ या न का सवाल ही न उठता था ।

माँ बैठ गईं और क्षीण-दुर्बल आवाज़ में एक पुराना गीत गाने लगीं-



स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस उठीं । तीन पक्तियाँ गाकर माँ चुप हो गईं । बरामदा तालियों से गूँज उठा । शामनाथ की खीज प्रसन्नता और गर्व में बदल उठी थी । माँ ने पार्टी में नया रंग भर दिया था ।

तालियाँ थमने पर साहब बोले— ''पंजाब के गाँवों की दस्तकारी क्या है ?''

शामनाथ खुशी में झूम रहे थे । बोले, ''ओ, बहुत कुछ— साहब ! मैं आपको एक सेट उन चीज़ों का भेंट करूँगा । आप उन्हें देखकर खुश होंगे ।''

मगर साहब ने सिर हिलाकर अंग्रेज़ी में फिर पूछा, ''नहीं, मैं दुकानों की चीज़ें नहीं माँगता । पंजाबियों के घरों में क्या बनता है, औरतें खुद क्या बनाती हैं ?''

शामनाथ कुछ सोचते हुए बोले, ''लड़कियाँ गुड़िया बनाती

हैं, औरतें फुलकारियाँ बनाती हैं ।"

"फुलकारी क्या ?"

शामनाथ फुलकारी का मतलब समझाने की असफल चेष्टा करने के बाद माँ से बोले, "क्यों माँ, कोई पुरानी फुलकारी घर में है ?"

माँ चुपचाप अंदर गईं और अपनी पुरानी फुलकारी उठा लाईं । साहब बड़ी रुचि से फुलकारी देखने लगे । साहब की रुचि को देखकर शामनाथ बोले, "यह फटी हुई है साहब, मैं आपको नई बनवा दूँगा । माँ बना देंगी । क्यों माँ, साहब को ऐसी फुलकारी बना दोगी न ?"

माँ चुप रहीं । फिर डरते-डरते धीरे से बोलीं, "अब मेरी नज़र कहाँ है बेटा ! बूढ़ी आँखें क्या देखेंगी ?" मगर माँ का वाक्य बीच में ही तोड़ते हुए शामनाथ साहब को बोले- "ज़रूर बना देंगी । आप उसे देखकर खुश होंगे ।"

साहब ने सिर हिलाया, धन्यवाद दिया और हलके-हलके झूमते हुए खाने की मेज़ की ओर बढ़ गए । जब मेहमान बैठ गए तो माँ धीरे से कुर्सी पर से उठीं, और सबसे नज़रें बचाती हुईं अपनी कोठरी में चली गईं । मगर कोठरी में बैठने की देर थी कि आँखों में छल-छल आँसू बहने लगे । वह दुपट्टे से बार-बार उन्हें पोंछतीं, पर वह बार-बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बाँध तोड़कर उमड़ आए हों । माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की मगर आँसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे ।

आधी रात का वक्त होगा । मेहमान खाना खाकर एक-एक करके जा चुके थे । माँ दीवार से सटकर बैठी आँखें फाड़े दीवार

को देखे जा रही थीं । तभी सहसा माँ की कोठरी का दरवाज़ा जोर से खटकने लगा ।

"माँ, दरवाज़ा खोलो ।"

माँ का दिल बैठ गया । हड़बड़ाकर उठ बैठीं । काँपते हाथों से दरवाज़ा खोल दिया । दरवाज़ा खुलते ही शामनाथ झूमते हुए आगे बढ़ आए और माँ को आलिंगन में भर लिया ।

"ओ अम्मी ! तुमने तो आज रंग ला दिया । ...साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि क्या कहूँ ।"

माँ की छोटी-सी काया सिमटकर बेटे के आलिंगन में छिप गई । माँ की आँखों में फिर आँसू आ गए । उन्हें पोंछती हुई धीरे से बोलीं, "बेटा, तुम मुझे हरिद्वार भेज दो । मैं कब से कह रही हूँ ।"

"क्या कहा, माँ ? यह कौन-सा राग तुमने फिर छेड़ दिया ?"

शामनाथ का क्रोध बढ़ने लगा था, बोलते गए— "तुम मुझे बदनाम करना चाहती हो ताकि दुनिया कहे कि बेटा माँ को अपने पास नहीं रख सकता । और यदि तुम चली जाओगी, तो फुलकारी कौन बनाएगा ? साहब से तुम्हारे सामने ही फुलकारी देने का इकरार किया है ।"

"मेरी आँखें अब नहीं हैं बेटा, जो फुलकारी बना सकूँ । तुम कहीं और से बनवा लो ।"

"माँ, तुम मुझे धोखा देके यूँ चली जाओगी ? मेरा बनता काम बिगाड़ोगी ? जानती नहीं, साहब खुश होगा, तो मुझे तरक्की मिलेगी ।"

माँ चुप हो गईं । फिर बेटे के मुँह की ओर देखती हुई बोलीं, "क्या तेरी तरक्की होगी ? क्या साहब तेरी तरक्की कर

देगा ? क्या उसने कुछ कहा है ?''

''कहा नहीं, मगर देखती नहीं, कितना खुश गया है । कहता था, जब तेरी माँ फुलकारी बनाना शुरू करेंगी तो मैं देखने आऊँगा । जो साहब खुश हो गया तो मुझे इतनी बड़ी नौकरी मिलेगी । मैं बड़ा अफसर बन सकता हूँ ।''

माँ के चेहरे का रंग बदलने लगा, धीरे-धीरे उनका झुर्रियों-भरा मुँह खिलने लगा, आँखों में चमक आने लगी ।

''तो तेरी तरक्की होगी बेटा ? मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पड़ेगा, बना दूँगी ।''

और माँ दिल ही दिल में फिर बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करने लगी और मिस्टर शामनाथ, ''अब सो जाओ, माँ,'' कहते हुए, तनिक लड़खड़ाते हुए अपने कमरे की ओर घूम गए ।

– भीष्म साहनी

सोचो और बताओ

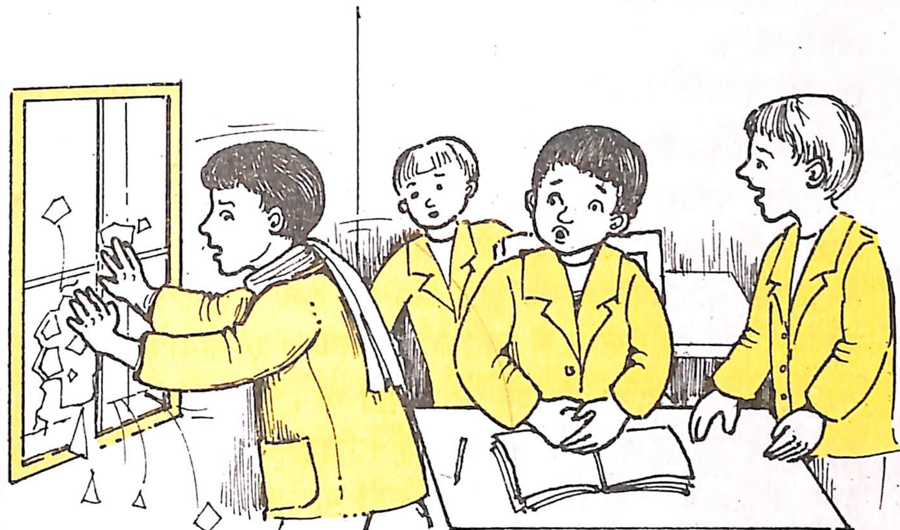
1. शामनाथ और उसकी पत्नी को क्या परेशानी थी ?
2. ''बड़े साहब ने आना है,'' यह कहकर शामनाथ ने अपनी माँ को क्या समझाया ?
3. शामनाथ के चीफ़ ने माँ से क्या फ़रमाइश की ?
4. माँ 'फुलकारी' बनाने के लिए क्यों तैयार हो गईं ?

सीखो-सिखाओ

पुत्र 'कुपुत्र' हो सकता है परंतु माता 'कुमाता' नहीं होती ।

चीफ़ की दावत कहानी को एकांकी में परिवर्तित करके कक्षा में उसका मंचन कीजिए ।

14. मित्र का ऋण



वे दोनों मित्र थे। बड़े ही अभिन्न, बड़े सच्चे। प्रकृति ने दोनों को भिन्न-भिन्नें साँचे में ढाला था। एक कायर था, दूसरा निर्भीक। एक मेहनती था, दूसरा आलसी, किंतु फिर भी दोनों मित्र थे। मित्र भी साधारण नहीं, एक दूसरे पर प्राण न्यौछावर करने वाले। एक का नाम था निकोलस़ और दूसरे का बेक। बेक को सत्य से प्रेम था और निकोलस को असत्य से।

एक दिन की बात है, स्कूल में दोनों अपने-अपने स्थान पर बैठे पढ़ रहे थे। शिक्षक महोदय कुछ देर के लिए बाहर चले गए। सभी लड़कों ने पढ़ाई बंद कर दी और ऊधम मचाने लगे। निकोलस ने सोचा कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे सबको मज़ा आए। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। सामने खिड़की में शीशा लगा हुआ था। निकोलस मन-ही-मन सोचने लगा यदि इसको फोड़ दूँ तो मज़ा आएगा। किंतु नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा यह तो मुसीबत खड़ी कर देगा। मैं ऐसा नहीं करुँगा।

निकोलस अभी सोच ही रहा था कि उसके हाथ आगे बढ़ गए । एक साधारण-सा धक्का, और बस, शीशा टूट गया । निकोलस का हृदय काँप उठा । चेहरा पीला पड़ गया । अब तो शिक्षक सजा देंगे । आश्चर्य नहीं, स्कूल से भी निकाल दें ।

निकोलस सिर झुकाकर अपने स्थान पर जा बैठा । साथियों ने किसी प्रकार शीशे को जोड़कर खिड़की में लगा दिया । शिक्षक आए । कमरे में सन्नाटा छा गया । कोई सिर भी नहीं हिला रहा था । शिक्षक को कुछ आश्चर्य हुआ । वे इस रहस्य को जानने के लिए कमरे में चारों ओर अपनी नज़र दौड़ाने लगे ।

टूटा हुआ शीशा खिड़की पर रो रहा था । शिक्षक को संदेह हुआ । वे उठकर शीशे के समीप गए । खिड़की का शीशा टूटा हुआ था । वे क्रोध से भर उठे— "जिसने यह शरारत की है, वह खड़ा हो जाए ।" किंतु कोई खड़ा नहीं हुआ । खड़ा होने की कौन कहे, किसी ने उत्तर तक नहीं दिया । शिक्षक का क्रोध उबल पड़ा । वे हर लड़के से पूछने लगे । उन्होंने निकोलस से भी पूछा । निकोलस मन में सोचने लगा, "क्या कहूँ ? तोड़ा है । न... न... मैं नहीं कहूँगा ।" उसने साफ़ इनकार कर दिया ।

अब बेक की बारी आई । वह निकोलस के पास ही बैठा था । उसने सोचा कि निकोलस मेरा मित्र है । उसने अपराध किया है, किंतु वह उसे अस्वीकर कर रहा है । उसका अपराध मैं क्यों न अपने सिर ले लूँ ? मित्र को ऐसा ही करना चाहिए ।

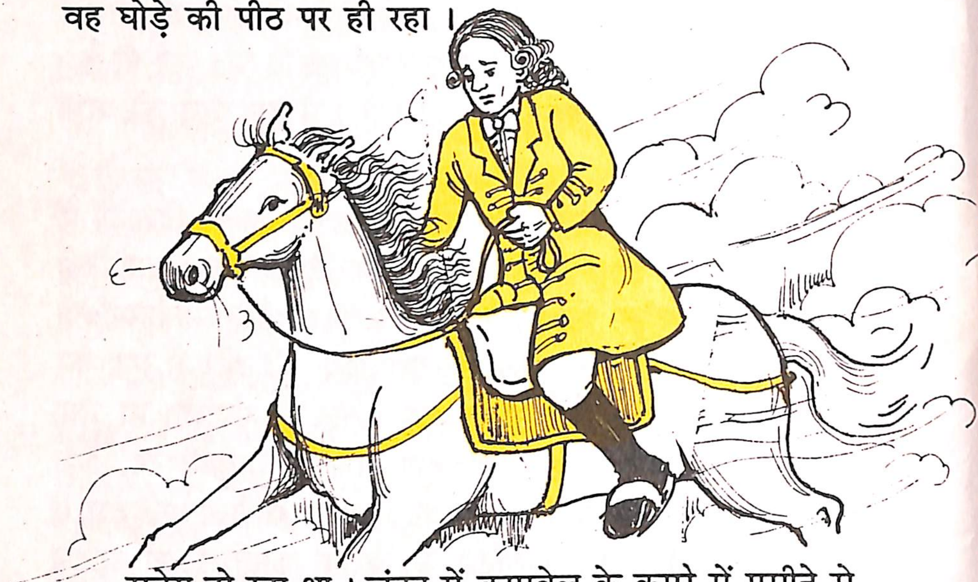
बेक ने कहा, "शीशे को मैंने तोड़ा है ।" लड़के आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगे । निकोलस शर्म से पानी-पानी हो गया । बेक पर मार पड़ने लगी । चमड़ी छिल गई, शरीर पर नीले-पीले दाग पड़ गए । देखने वाले सिहर उठे, किंतु बेक के चेहरे पर दृढ़ता और विजय की भावना थी ।

छुट्टी हुई । निकोलस चुपचाप खड़ा था । आँखों में आँसू थे । वह मन ही मन अपने को धिक्कार रहा था । उसने बड़ी कठिनाई से रुँधे हुए स्वर में कहा, "बेक, तुमने इस त्याग से मेरे भीतर सच्चाई तथा मानवता की एक नई ज्योति पैदा कर दी है । मुझ पर तुम्हारा यह बहुत बड़ा ऋण है । मैं इस ऋण को कभी नहीं भूलूँगा ।"

चालीस वर्ष बीत गए । दोनों मित्र अलग-अलग दिशाओं में थे । निकोलस न्यायाधीश था और बेक सेनानायक । उन दिनों इंग्लैंड में क्रामवेल का शासन था । राजतंत्र और प्रजातंत्रवादियों में मुठभेड़ें हो रही थीं । बेक राजतंत्रवादियों की ओर से युद्ध कर रहा था । राजतंत्रवादी पराजित हुए । वह भी पराजित हो गया और अपने साथियों के साथ बंदी बनाकर 'एकजिस्टर' भेज दिया गया, जहाँ निकोलस न्यायाधीश था । वहीं बेक बंदी रूप में उपस्थित किया गया । प्रजातंत्र के शासक क्रामवेल का आदेश था—राजतंत्रवादी कैदियों के लिए मृत्यु । निकोलस बारी-बारी से सबके लिए मृत्युदंड का आदेश सुनाने लगा । जब कर्नल बेक का नाम लिया गया तो वह आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगा । उसने उसे देखा, पहचाना, किंतु कर्तव्य ने उसे विवश कर दिया था । उसने कुछ सोचा और तब निर्णय देते हुए कहा— "चार दिन के पश्चात सबको फाँसी दे दी जाए ।"

किंतु निकोलस की आत्मा व्याकुल हो उठी । पागलों की तरह वह न्यायमंच से उठकर अपने कमरे के भीतर भाग गया । नौकर-चाकर, सिपाही-सैनिक सभी अवाक । इधर निकोलस ने कमरे के भीतर नौकर को बुलाकर उसके सामने चाँदी के कुछ सिक्के फेंके और कहा, "मेरे लिए एक ऐसा घोड़ा लाओ जो सबसे तेज़ दौड़ सके ।" कुछ देर बाद लोगों ने देखा कि निकोलस हवा से बातें करते हुए लंदन की ओर भागा । वह

अपने मित्र बेक को किसी भी तरह बचाना चाहता था और इसी लिए क्रामवेल के पास लंदन जा रहा था । दो रात और एक दिन वह घोड़े की पीठ पर ही रहा ।



सवेरा हो रहा था । लंदन में क्रामवेल के कमरे में पसीने से लथपथ निकोलस खड़ा था । क्रामवेल ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा । उसके मुख से निकल पड़ा, "कौन, न्यायाधीश निकोलस ! यहाँ, इस समय, ऐसी दशा में ।"

निकोलस ने कहा, "हाँ, मैं हूँ निकोलस । मुझ पर अपने मित्र का बहुत बड़ा ऋण है । अब समय आ गया है कि मैं उस ऋण को चुका दूँ । किंतु आपकी सहायता के बिना यह असंभव है ।" क्रामवेल आश्चर्य से निकोलस की ओर देखने लगा । उसने कहा, "मित्र का ऋण चुकाने में मेरी सहायता ?"

निकोलस ने अपनी और बेक की मित्रता की कहानी क्रामवेल को सुना दी । उसने कहा, "आज मैं जो कुछ बन सका हूँ, वह केवल बेक के ही कारण । बेक ने ही मुझे इस स्थान पर पहुँचाया है । मैं कायर था तभी तो शीशा तोड़ने का अपराध

स्वीकार नहीं किया । अपने उसी मित्र के लिए मैं आपसे क्षमादान चाहता हूँ ।"

क्रामवेल बड़ा ही कठोर था । अपने विरोधियों के प्रति उसके हृदय में रंचमात्र भी दया न थी । किंतु निकोलस और बेक की मित्रता की कहानी सुनकर उसका मन भी पिघल गया । उसने क्षमादान का पत्र लिखकर निकोलस को देते हुए कहा, "आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ, निकोलस ।"

निकोलस उसी समय वहाँ से चल पड़ा । और 'एकजिस्टर' पहुँचकर शीघ्र ही जेलखाने में जा पहुँचा । बेक एक कोठरी में बंदी के रूप में बैठा था । उसने क्षमादान का पत्र बेक की ओर बढ़ाकर उसे अपनी भुजाओं में कस लिया और रुँधे हुए गले से कहा, "क्या मुझे भूल गए बेक ?" बेक ने भी उसी स्वर में उत्तर दिया, "तुम भी कभी भुलाए जा सकते हो, निकोलस ।" दोनों मित्रों की आँखें डबडबा रही थीं ।

– *कांतिलाल जोशी*

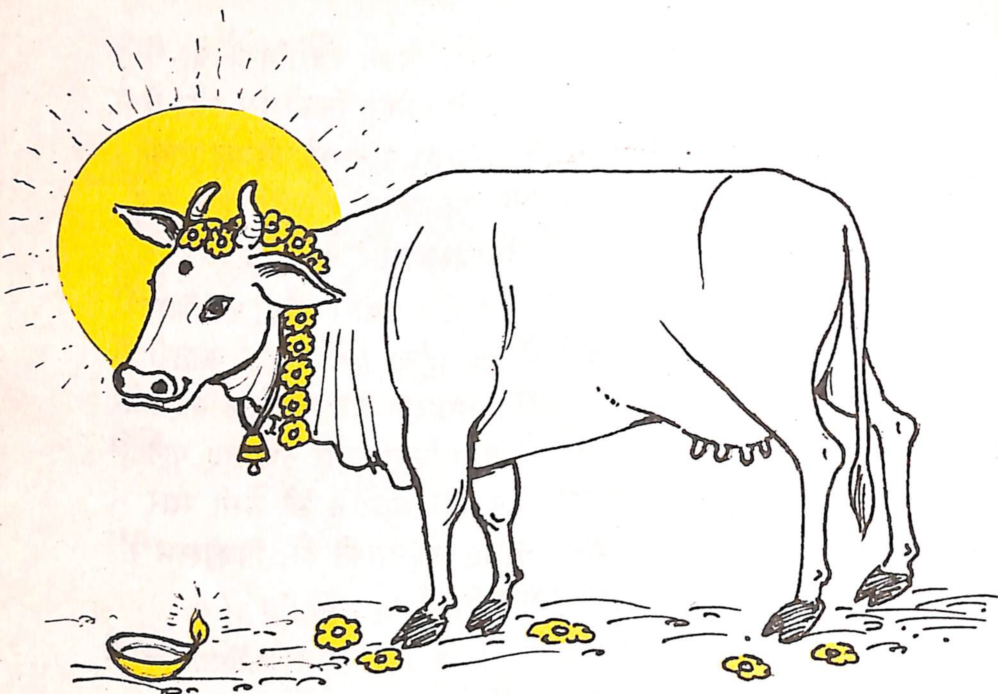
सोचो और बताओ

1. बेक ने शीशा तोड़ने का अपराध अपने ऊपर क्यों ले लिया ?
2. छुट्टी होने पर निकोलस ने बेक से क्या कहा ?
3. क्रामवेल पर निकोलस की प्रार्थना का क्या प्रभाव पड़ा ?
4. मित्र का ऋण क्या था ?

सीखो-सिखाओ

सच्चा मित्र अपनी सद्वृत्ति तथा शुद्ध आचरण से अपने मित्र को सही मार्ग की ओर अग्रसर करता है ।

15. गौरा



गौरा मेरी बहन के घर पली हुई गाय की बछिया थी । उसे इतने स्नेह और दुलार से पाला गया था कि वह अन्य गाय के बछड़ों से एक विशेष स्थान रखती थी ।

बहन ने एक दिन कहा, तुम इतने पशु-पक्षी पाला करती हो, एक गाय क्यों नहीं पाल लेतीं, जिसका कुछ उपयोग हो । मैंने खाने की किसी भी समस्या के समाधान के लिए पशु नहीं पाले थे । पशु-पक्षियों से बचपन से ही मुझे प्यार था । बहन के आग्रह से मैंने ध्यानपूर्वक गौरा को देखा । लंबी सुडौल गर्दन, लचीले पैर, चिकनी पीठ, कमल की दो पंखुड़ियों जैसे कान, सघन लंबी पूँछ । गौरा को देखते ही मैंने उसे पालने का निश्चय कर लिया ।

गाय जब मेरे बंगले पर पहुँची, उसे लाल-सफ़ेद गुलाबों की माला पहनाई गई, केसर-रोली का टीका लगाया गया। घी का दीया जलाकर आरती उतारी गई और उसे दही-पेड़ा खिलाया गया। उसका नामकरण हुआ गौरांगिनी या गौरा। पता नहीं इस स्वागत का उस पर क्या प्रभाव पड़ा, परंतु वह बहुत प्रसन्न जान पड़ी।

गौरा वास्तव में बहुत सुंदर थी। उसकी काली आँखों का सौंदर्य तो देखते ही बनता था। उन आँखों में एक अनोखे विश्वास का भाव था। इस पशु को मनुष्य का अत्याचार सहना पड़ता है फिर भी उसकी आँखों में न विस्मय का भाव होता है न डर का। महात्मा गाँधी ने 'गाय करुणा की कविता है' क्यों कहा, यह उसकी आँखें देखकर ही समझ आ सका।

कुछ ही दिनों में वह सबसे हिल-मिल गई। कुत्ते-बिल्ली उसके पेट के नीचे और पैरों के बीच में खेलने लगे। पक्षी उसकी पीठ और माथे पर बैठ उसके कान तथा आँखें खुजलाने लगे। वह भी उन सबके साथ आँखें मूँदकर सुख का अनुभव करती।

हम सबको वह आवाज़ से नहीं, पैर की आहट से भी पहचानने लगी। समय का इतना अधिक ज्ञान उसे हो गया था कि मोटर के फाटक में प्रवेश करते ही वह बाँ-बाँ की ध्वनि से हमें पुकारने लगती। चाय-नाश्ता तथा भोजन के समय से भी वह इतनी परिचित थी कि कुछ समय प्रतीक्षा करने के उपरांत रँभा-रँभाकर घर सिर पर कर लेती थी। मनुष्यों के समान वह भी औरों की निकटता चाहती थी। जैसे ही उसके पास जाते, वह गर्दन और पास कर देती थी। हाथ फेरने पर अपना मुख कंधे पर रखकर आँखें मूँद लेती।

एक वर्ष के बाद गौरा एक सुंदर बछड़े की माता बन गई । बछड़े का रंग लाल था, उसका नाम रखा गया लालमणि परंतु उसे सब लालू कहकर पुकारते थे । अब हमारे घर में दुग्ध महोत्सव आरंभ हुआ । गौरा प्रातः बारह सेर के लगभग दूध देती थी । लालमणि के लिए भी पर्याप्त दूध देने के पश्चात इतना दूध शेष रहता था कि आस-पास के लोग, कुत्ते-बिल्ली तक उस दूध का भोग करते थे । दुग्ध दोहन के समय वे सब गौरा के सामने एक पंक्ति में खड़े हो जाते और महादेव उनके आगे बरतन रख देता । दूध पीने के बाद कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वे उसके चारों ओर उछलने-कूदने लगते ।

पर अब समस्या थी तो दुग्ध दोहन की । घर के नौकरों को दूध दोहना नहीं आता था और जिनको थोड़ा बहुत ज्ञान था, वे घंटों लगा देते थे । गौरा के आने से पहले जो ग्वाला हमारे यहाँ दूध देता था उसको बुलाकर हमने इस समस्या का समाधान पा लिया ।

दो-तीन मास के उपरांत गौरा ने दाना-चारा खाना बहुत कम कर दिया और वह दुर्बल तथा सुस्त रहने लगी । चिंतित होकर मैंने पशु चिकित्सकों को बुलाकर दिखाया । वे कई दिनों तक एक्सरे द्वारा रोग का कारण खोजते रहे । अंत में उन्होंने निर्णय दिया कि गाय को सुई खिला दी गई है जो उसके रक्त संचार के साथ हृदय तक पहुँच गई है । उसकी मृत्यु निश्चित है ।

मुझे कष्ट और आश्चर्य दोनों हुए । सुई किसने-क्यों खिलाई ! दाना-चारा तो हम देख-भालकर देते हैं । पर डॉक्टर के उत्तर से ज्ञात हुआ कि किसी ने गुड़ की बड़ी डली के बीच रखकर सुई खिलाई है जो सीधी गले से नीचे उतरकर हृदय में पहुँच गई है ।

अंत में एक ऐसा कठोर सत्य मेरे सामने आया जिसकी कल्पना भी मेरे लिए संभव नहीं । प्रायः कुछ ग्वाले ऐसे घरों में, जहाँ उनसे अधिक दूध लिया जाता था, गाय का आना सह नहीं पाते क्योंकि उनकी आय का साधन बंद हो जाता है । अवसर मिलते ही वे गुड़ में सुई लपेटकर उसे खिलाकर उसकी मृत्यु निश्चित कर देते हैं । गाय के मर जाने पर उन घरों में वे पुनः दूध देने लगते हैं । सुई की बात ज्ञात होते ही ग्वाला गायब हो गया ।

तब गौरा का मृत्यु से संघर्ष आरंभ हुआ । इसे याद करके भी मन काँप जाता है । डॉक्टरों ने कहा इसे सेब का रस पिलाया जाए, अतः नित्य कई-कई सेर सेब का रस निकाला जाता और नली से गौरा को पिलाया जाता । शक्ति के लिए इंजेक्शन दिए जाते । इंजेक्शन की लंबी मोटी सुई देखकर उसकी चुभन और पीड़ा का अनुमान लगाया जा सकता है पर गौरा उसकी पीड़ा शांति से सहती । केवल कभी-कभी उसकी सुंदर, पर उदास आँखों के कोनों में पानी की दो बूँदें झलकने लगती थीं ।

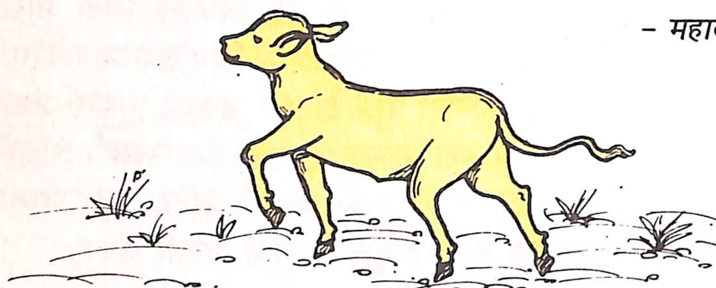
अब वह उठ नहीं पाती थी परंतु जब भी मैं उसके पास जाती वह अपना उदास मुख मेरे कंधे पर रख देती थी । लालमणि बेचारे को माँ के दुख का कोई ज्ञान न था । अब उसे दूसरी गाय का दूध पिलाया जाता था जो उसे अच्छा नहीं लगता था । गौरा के पास पहुँचकर उसे सिर मार-मारकर उठाना चाहता था पर सब व्यर्थ ।

अब गौरा की सुंदर चमकीली आँखों की आभा समाप्त हो चली थी । कई पशु-विशेषज्ञों को बुलाया, पर किसी ने ऐसा उपचार नहीं बताया जिससे आशा की कोई किरण मिलती । सेब का रस भी कंठ में रुकने लगा । मैंने उसके अंत का अनुमान लगा

लिया था । अब मेरी एक ही इच्छा थी कि मैं उसके अंत समय उसके पास रहूँ । अंत में एक दिन प्रातः चार बजे जब मैं गौरा को देखने गई, तब उसने अपना मुख सदा के समान जैसे ही मेरे कंधे पर रखा, वैसे ही वह एकदम पत्थर जैसा भारी हो गया और मेरी बाँह पर से सरककर धरती पर आ गया । शायद सुई ने हृदय को बेधकर बंद कर दिया ।

गौरांगिनी को ले जाते समय मानो करुणा का सागर उमड़ आया, परंतु लालमणि इसे भी खेल समझ उछलता-कूदता रहा । मेरे मन में केवल एक आवाज़ गूँजती रही— "आह मेरा गोपालक देश !"

– महादेवी वर्मा



सोचो और बताओ

1. गौरा को पालने में महादेवी के मन में दुविधा क्यों थी ? वह निश्चय में किस प्रकार बदल गई ?
2. 'गाय करुणा की कविता है,' महात्मा गाँधी ने ऐसा क्यों कहा है ?
3. गौरा के रूप सौंदर्य का वर्णन अपने शब्दों में करो ।
4. लेखिका ने अंत में क्यों कहा है– "आह मेरा गोपालक देश !"

सीखो-सिखाओ

पशुओं के प्रति प्रेम की भावना मानवता का मूल धर्म है ।

मधु कलश

भाग 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8

'मधु कलश' एक अनूठी सहायक पुस्तक शृंखला है जिसका मुख्य उद्देश्य ज्ञान, मनोरंजन एवं भाषा योग्यता का विकास है। सरस, मधुर और मनोरंजक गतिविधियों से गुँथी इस माला द्वारा छात्रों को जीवन के उन मूल्यों से परिचित करवाया गया है जो उनके व्यक्तित्व का विकास कर उन्हें आदर्श नागरिक बनाते हैं।

मधु रस से भरे इस कलश द्वारा जहाँ एक ओर बालक-बालिकाओं की पठन क्षमता का विकास होगा वहीं दूसरी ओर रोचक गतिविधियाँ उनके मानसिक विकास में सहायक होंगी।

आशा है यह सहायक पुस्तक माला हिंदी पठन-पाठन में एक विशेष भूमिका निभाएगी।

ISBN 81-259-0558-8

Reprint 1999

Rs 35



MADHUBAN
EDUCATIONAL
BOOKS

a division of

VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD

576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi-110 014
Phones: 4314605, 4315313 Fax: 91-11-4310879
Email : chawlap@giasdl01.vsnl.net.in
Internet://www.ubspd.com